अनेक प्रकार की पुस्तकें इस यंत्रालयमें मुद्रितहुई हैं उन में से जितने वेदांतहैं उनसे चुनकर कुछ पुस्तकें नीचे लिखीजाती हैं जिन महाशयों को इसमें से किसी पुस्तककी आवश्यकता हो वे इस प्रेसके मैनेजरको पत्र लिखकर मँगालें तथा पुस्तकों का जो सूचीपत्र छपा है वह भी मँगाकर देखलें।

श्रीज्ञानप्रभाकर बलदेवदासकृत ॥

जिसमें भगवतीगीता, पराशरगीता, कपिलगीता, अवधूत गीता, जड़भरतगीता, सिद्धगीता, जीवन्मुक्तगीता, भुशुण्डि गीता, परमार्थगीता, रामगीता, ब्रह्मगीता, और रुद्रगीताआदि का वर्णन अनेक प्रकारके छन्दों में है ॥

सत्यनामबिहारबृन्दाबन ॥

महात्मा वृन्दाबनजी आचार्य्य रचित—जिसमें मनुष्य के लिये अति उपकारक पद्यमें उपदेश और उनकी टीका, छहों शास्त्र और अपने मत का आशय और उनमें अपनी मति का प्राकट्य और उनके निर्णय के लिये दृष्टांत पूर्वक विचित्र कथा वेदांत का परिपूर्ण आशय, नादकी उपासनाका परिणाम अंत में चौपाई, छंद, ककहरा, विनती, बारहमासा, होली और रेखता आदि रागों में श्रीमद्भगवद्यश है इसमें सबोंका विशेष करके उपकार है ॥

बीजककबीरदास सटीक ॥

जिसमें आदि मंगल, रमैनी, शब्द, ककहरा, बसन्त, चौंतीसी, साखी इत्यादि अनेक दुःखी जीवों के उपकारक योग और उपासनादि मतका प्रकाश और श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप का ज्ञानहै इसके मूल को कबीरदासजी और टीका महाराजाधिराज रीवां राज्याधिपति श्री १०८ विश्वनाथ बैकुण्ठवासीकीहै॥

ज्ञानतरंग ॥

मंगलदासजीकृत, जिसमें संपूर्णब्रह्मज्ञान वर्णन कियागयाहै॥

भूमिका

दोहा

शिव स्वरूप करुणा भवन श्री गुरु ज्ञाननिधान ॥
आदि शक्ति भुवनेश्वरी सत चित आनँद खान १
परमतत्त्व शिव शक्ति अज सो श्री सीताराम ॥
करहुं युगुल पद पद्मरज वहुविधि विनय प्रणाम २

तदनन्तर यह अधम देह युगलकिशोर शरण जिस को लोग मुन्शी (जगतकिशोर) भी कहते हैं पुत्र राय हरकिशोर पौत्र राय नवलकिशोर कायस्थ वंशावतंस भटनागर चित्रगुप्तवंशी बासी सिकन्दराबाद ज़िले बुलन्दशहर का यह प्रार्थना करता है यद्यपि यह शरीर कामादिक रत मन्दमति विद्या और शुभगुण रहित है संवत् १९१६ तक चालीसवर्ष अपनी आयु के गृहस्थाश्रम और उद्यम नौकरी सरिश्तेदारी आदिक ज़िले अजमेर और नीमच में खोये तदपि श्रीजीकी कृपा करके संवत् १९१७ से प्रयागराज और मथुराजी और अयोध्याजी काशीजी का निवास जो प्राप्त होता रहा और इन उत्तम देशों में लाभ सत्संग महात्माओं का और श्रवण पाठ श्रीरामायण और गीताजी और योगवाशिष्ठ आदिक का वनाचलागया अपने दुष्टमन के हित और सज्जनों जिज्ञासियों के आनन्द के हेतु परमेश्वर के गुणानुबाद को एक अंग भक्तिका समझ भाषा उर्दू में रामचरित्र और अर्थ गीता जी और पद विनय बंदना में कुछ २ लिखता भी रहा उन मसौदात

मेंसे एक यह चिट्ठा वेदांत के संग्रहमें भी प्रश्नोत्तर करके संवत् १९२८ में होगया और युगल सम्वाद बोधप्रकाश नाम रक्खागया यद्यपि यह अध्यात्म विद्या अनधिकारियों से छिपावने योग्यभी है परंतु इसकाल में अन्तःकरण की शुद्धिके कारण विद्या और वेदोक्त उपासना सुकृति शुभ साधन बहुत कम होगये हैं और वेद शास्त्र का पढ़ना और उसके तात्पर्य्य की समझ वृत्तियों में वर्त्ताव करना घटगया तो संक्षेप वार्तिक भाषा उर्दू में लाभकारी परमार्थ का और अन्तःकरण की शुद्धि का हेतु जानागया इस करके और सज्जनों की रुचि और आज्ञाकरके और मुन्शी नवलकिशोर साहब की तवज्जुह करके संवत् १९४० में नागरी मंतबे अवध अख़बार में छापागया सब साहिबों की ख़िदमत में प्रार्थना करता हूं कि जिसको अपने परिणाम सुधारने की इच्छा और श्रद्धा हो सो लेकर इहतियात से रक्खें और एकांतमें बिचारकर शुभ साधन भक्ति युक्त होय अपने निज स्वरूपानंद में निमग्न हों हे सच्चिदानंदघन दयासदन वक्ता श्रोता पर कृपादृष्टि करके विमलता अनबुद्धि की दीजै और अपराध क्षमा करना शुभमंगलमस्तु ॥

इति

युगलसम्बाद बोधप्रकाश ॥

दोहा ॥

सतचिद आनंद रूपतुम तुम्हींगुरू तुमदेव ।
नित्यशुद्ध सर्बज्ञइक निर्गुण सगुण अभेव ॥
सकल प्रकाशक रामतुम तुमको शीशनवाय ।
युगुलदासमतिहितकहत गुरुजनवचनसुनाय ॥

जिसदेह में कि मोहरूपी निद्रासे जागनेका उपाय और भवसागर दुःख क्लेश के भरेहुए से सुख के किनारे पर पहुंचने का साधन बन सक्ता है वह यही मनुष्यदेह है दूसरे शरीर में कुछ नहीं बनता सो यह मनुष्य तनु अति दुर्लभ है समे शिर धर्म के समूह के फल करके परमेश्वरकी कृपाकरके प्राप्तहोताहै इसबातको अवश्य शोचना चाहिये कि परमेश्वर के ज्ञान भक्तिरूपी मन की प्राप्ति में यत्न नहीं करना और बिषयादिक काच केही खिलौनों दुःखप्रनासी में वृथा आयु व्यतीतकर क्लेश सहना और अमृत को छोड़ विषयरूपी बिष को पीते रहना कितना अनर्थ और जन्माजन्म दुःखों का

भोगनाहै यद्यपि समस्त प्राणी सुखको चाहते हैं दुःख की इच्छा किसी को नहीं होती परंतु अज्ञान करके उलटा दुःखोंकाही उपाय करते रहते हैं नित्य सुख का उपाय नहीं करते जो वस्तु कि उपाय करके सिद्धहोती है और शोच विचारके योग्यहै उससे सर्वथा अशोच रहतेहैं और जो बस्तु विना उपाय सिद्धहै उसके शोच और उपाय में अहर्निश आयु गँवाय माया कृत भ्रम रूपी काराग्रह में बंदीवान् हुये बारम्बार जरा मरण जन्मादिकके दुःख क्लेश भोगा करते हैं यही संसार एक काराग्रह चौरासीलाख कोठरीवाला है जिसमें यह चिदाभास भ्रम अविद्यामय अहं मानता हुआ जिसको जीव कहते हैं अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को भूलकर और परमात्मासे विमुख होकर चोरी विषय भोगादिक का अपराधी हो बंदीवान् हुआ है ममता वासना की बेड़ी पांवोंमें राग द्वेषकी हथकड़ी हाथों में इन्द्री और इन्द्रियों के देवता जो चौकी पहरेवाले देहमें स्थित हैं निकलने नहीं देते हैं उस काराग्रहके दरवाजे से मिला हुआ एक यही मकान मनुष्य शरीर है जहां आयकर बंदिका दुःख मुक्तका सुख समझकर यत्न करसक्ता है परंतु परदा अविद्या और मोहका जो पड़ाहुआहै उस को उठाकर निकल नहीं सक्ता है न उपाय काटने बेड़ी ममता बासना का करता है न वे आंखें हैं जो काराग्रह का द्वार उसको सूझै मोह विवश होकर अपने को बंदीवान् भी नहीं जानता है जब आगे को बढ़ा अंतःकरण की मलीनता कर और आलस्य करके इंद्री वि-

वश हुआ द्वार से हटकर फिर उसी चौरासी लाख के चक्रमें जापरता है वंदीवान् को चाहिये कि शीघ्र इस कारागृह के पहरेवालों को जो मन इंद्रियादिक और उनके देवता हैं मिलावट विचारादिक से अपने वश में करे और सद्गुरुरूपी लुहारको तलाश करके उनके वैराग्यादिक उपदेशरूपी छैनी से वासना ममतारूपी वेड़ी और हथकड़ी को काटकर कारागृह के द्वारसे पर्दा मोह अविद्याको उठाकर वाहर निकल जाय इस उपाय में भगवत् भक्ति का आश्रय अवश्यहै किसवास्ते कि इसकलिकाल में तप यज्ञ योगाभ्यासादिक दुस्तर हैं परमेश्वरकी आराधना और निष्काम भक्तिका सहारा सुगम है जिस्से मन इन्द्रियों का निरोध और वैराग्य की उत्पत्ति और अन्तःकरण की शुद्धता का लाभ हो सक्ता है क्योंकि विना एकाग्रता मन के और बिना वैराग्यकी प्राप्ति और स्थिरता आत्मज्ञान की कठिन है प्रथम सात्विकी श्रद्धा और शुभ इच्छाका हृदय में जमाना चाहिये फिर शुभकर्मवर्णाश्रम वेदविहित काम्य और निषेध को त्याग के करे और नवधा भक्ति को जिस की रीति आगे कहेंगे साधे और जो साधन अन्तरंग और वहिरंग वेदने कहे हैं वे भी लिखे जातेहैं प्रथम सीढ़ी वहिरंग साधन की ये हैं सात्विकी तप १ सात्विकीदान२ सात्विकीयज्ञ३ और अष्टांग योगजिसमें यम, प्राणायाम, धारणा, आसन, मुद्रा, समाधिहैं ४ भगवत् भजन पूजन स्मरण कीर्त्तनादिक ५ ब्रह्मचर्य्य शौच६ सत्संग गुरुसाधु सेवा ७ नित्य नैमित्त कर्म वेदानुसार

८ और आठ ८ अन्तरंग साधन ये हैं नित्य अनित्य वस्तु का विवेक १ दोनों लोक के फल भोग से वैराग्य २ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान ३ मुमुक्षुता ४ श्रवण सत् शास्त्र ५ मनन ६ निदध्यासन ७ महावाक्य को शोधन ८ मनुष्य को चाहिये कि उपाय, पालन, पोषण अपनी देह और गृहस्थ का सन्तोष वृत्ति करके प्रारब्धपर छोड़े क्योंकि प्रारब्ध और आयु शरीरों के पालन और रक्षा करनेवाले हैं सो वो प्रारब्ध संचित पूर्व कर्म करके होती है जिसको पहिले करचुका है दुबारा शोच और साधन करना वृथा है प्रारब्धानुसार भोजन वस्त्रादिक सुख दुःख हानि लाभ सब जगह सबको समय पर मिलैगा अनाश्रित जो क्रिया भोग आगे आगया उसको बिना रागद्वेष के और बिना हर्ष शोक के संतोषपूर्वक भोगलेना चाहिये मनको निश्चल करके अपनी देह को अपनी प्रारब्ध पर और अपने कुटुम्ब को उनके प्रारब्ध पर छोड़कर यह करे कि निःषेध और काम्य कर्म की तरफ़ मन और तन को जाने न दे और दूसरे सुकर्म वेद बिहित नित्य नैमित्त भगवत् भजनादिक का भक्तिसहित बिना फल की चाहके नेम रक्खे तीसरे सत्संग साधु सेवा सत्व शास्त्र का श्रवण करतारहै और मनन और बिचारको बढ़ाताजाय और सद्गुरु ब्रह्मवेत्ताकी तलाशमें रहै सद्गुरु ब्रह्मवेत्ता के लक्षण येहैं अहंकार काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेषका हृदयमें अंश न होय १ जीव ब्रह्मकी एकत्वता निश्चय करिकै जानै २ वेद के तात्पर्य को पहिचानै ३ ज्ञान त-

त्पर दयावान् परोपकारी समान चित्तहो ऐसा गुरू शिष्यके संशय विपर्य्ययको अज्ञान सहित दूर करसक्ता है संशय शक और वहमको कहतेहैं विपर्य्यय प्रतिकूल समझने को कहतेहैं अज्ञान न जानने को कहते हैं जो अपने आत्मा स्वरूप को न जानै उस्से तात्पर्य्य अन्यथा मान काहै कि वा सत्व में रस्सीहै उसको तिमिर और नेत्रके विकार करके सांप दिखाई देताहै और वही गुरु शिष्य के हृदयका क्लेश जो पांचप्रकार का है और पांच प्रकारके भेद को दूर करसक्ता है पांच५ क्लेश ये हैं अविद्या १ राग २ द्वेष ३ अस्मता ४ अधिनिवेश ५ अविद्या चार प्रकार की हैं अनित्य में नित्य वुद्धि अपवित्रमें पवित्र वुद्धि दुःखमें सुख वुद्धि अनात्मामें आत्म वुद्धि रागके अर्थ स्वार्थ और प्रीतिकेहैं इष्ट वस्तुमें द्वेष वैरभाव प्रतिकूल ब्रह्ममें जिसको अप्रिय दुःखरूप जाने हैं अस्मता द्रष्टा और अदृश्यका न जानना और चित्त की विक्षेपताहो और निरोध न हो अधिनिवेश इसको कहतेहैं कि वस्तुको मिथ्या जानै तौ भी उसमें आग्रह बनारहे और पांच प्रकारके भेद ये हैं चैतन्य और जड़का भेद जीव ईश्वर का भेद जीवों का परस्पर भेद जीव जड़का भेद ऐसे गुरु गृहस्थी हों अथवा विरक्त हों शिष्य के दोष हरिके बोध करासक्तेहों गृहस्थी महात्मा भी याज्ञवल्क्य उद्दालक वशिष्ठ जनकादिक हुये हैं और आचार्य्य ब्रह्मनिष्ठ तो हो परंतु वेद पढ़ा न हो सो आप तो मुक्त हैं और उत्तमाधिकारी शुद्ध अन्तःकरणवाले को भी उपदेशकर आवर्ण दूर करसक्ताहै परंतु

मध्यम और कनिष्ठ अधिकारी मलीन अन्तःकरण के संशय विपर्य्यय क्लेश और भेद युक्तियों करके दूर नहीं करसक्ता है शुद्ध अन्तःकरण के अर्थ ये हैं कि प्राणी के हृदयमें से जो चैतन्य की सत्ता करकें वृत्ति उठती है वो चार प्रकारकी होती है संकल्प विकल्प वृत्ति का तो नाम मनहै। उसका धर्मक्रिया उपजाने काहै जानना निश्चय रूपी वृत्तिको बुद्धि कहतेहैं उसका धर्म ज्ञान उपजानेका है चित्त और अहंकार यद्यपि इन दोनों में युक्तहै परंतु स्वरूप इन दोनों का भी जुदा जुदा है चित्तरूपी वृत्ति भण्डारे की नाईं है उसमेंसे स्मरण और बासना आती जाती है मैंहूं और ये स्त्री पुत्र धन धाम मेरे हैं ये मैंने किया यह करूंगा इसवृत्तीको अहंकार कहते हैं मुझको दुःख सुखहैं ये चारो अंदर हृदय में सूक्ष्म शरीरके क्रियाकरने वाले सुखदुःख हर्ष शोकभोगनेवाले अंतःकरण कहलाते हैं उसके आज्ञाकारी दश इन्द्रियां हैं चक्षु श्रोत्र त्वचा नासिका जिह्वा ये पांच५ ज्ञानेन्द्रियां कहलाती हैं ये सतो-गुण के अंश से हैं जिससे पदार्थ का जानना होताहै हाथ पांव वाक् उपस्थ गुदा ये पांच कर्म इन्द्री हैं रजो-गुणके अंशसे हैं जिनसे क्रिया होती है सो इस अंतः-करण में तीन३ दोष होतेहैं मल १ बिक्षेप २ आवर्ण ३ मल मैलको कहतेहैं पिछले अशुभ कर्म जनित अशुभ बासना तमोगुण मोहमय होताहै बिक्षेप चिंता विक-लता रज तम काम क्रोध मय होताहै आवर्ण परदे को कहतेहैं वर्ण आश्रम कर्म वेदानुसार निष्काम करने से मल दूर होताहै उपासना से बिक्षेप दूर होताहै उसका

तात्पर्यमनकीएकाग्रतासेहै आवर्ण ज्ञानात्मा से दूरहोता
है इन तीनों के वास्ते वेद रचेगयेहैं जिनकी संख्याएक
लाखश्लोककीहैजिनमें८००० अस्सीहजार कर्मकांड
१६००० सोलहहजार उपासना ४००० चार हजार
वेदान्त उपनिषद्‌हैं येवेद तीनोंदोषके मानों वैद्यकनिदान
हैं कर्मकांडरोचक और भयानकहैं जैसे बालकको उसके
माता और पिता लालच और भय दिखलाकर लिखना
पढ़नाऔर व्यवहार सिखलाते हैं अथवा रोगी बालकको
माता मीठीचीज दिखलाकर करुवीदवा पिलादेतीहैऔर
भय दिखलाकर कुपथ से हटाती है माता का तात्पर्य
मीठे खिलाने और ताड़ना करने में नहीं है बालकके
रोग के नाशमें है मूर्ख जन कड़वी दवा नहीं पीवते हैं।
मीठे के लालचमें यद्यपि मारखाते हैं दुःखोंको सहते हैं
परन्तु कुपथ नहीं छोड़ते हैं ता करके कुशल कल्याण
को प्राप्त नहीं होते और ऐसे मूर्ख रोगी अपने अपने
रोगोंको और उनके परिणाम को भी जानते नहीं कर्म
की परिपक्क उपासना है उपासना का परिणाम ज्ञान है
आवर्ण तो क्षणमात्रमेंही गुरूके उपदेश से दूर होजा-
ताहै सो जो शिष्य ऐसाहै जिसमें सुकर्म निष्काम और
उपासनासे पूर्व्व जन्म संस्कार करके अथवा वर्त्तमानमें
साधन करके अपना अन्तःकरण शुद्ध करलियाहै फिर
उसको आचार्य्य ज्ञान नष्ट शीघ्र कृतार्थ करसक्ता है
इस काल में मलीन अंतसवाले बहुत हैं जिनसे शुभ
कर्म और उपासना का प्रयत्न तो नहीं बनसक्ता काहे
से कि विषय लोलुपता और ममता राग द्वेष छोड़ा

नहीं जासक्ताहै विचार करते नहीं कथन मात्र आपको ज्ञानी मानकर परस्पर बाद किया करते हैं ता कारण अनर्थ दुःख संसृतिकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति उनको होती नहीं जो पानी पानी कहने से प्यास दूर होजाय अवथा प्रज्वलित अग्नि शान्त होजाय तोवे जनभी परम पद पावें किसलिये कि तात्पर्य्य तौ मल विक्षेपादिक रोग जो मन बुद्धिमें हैं उनके मिटाने और बासनाके दूर करनेसेहै जब ये उपाधी दूरहुई तौ आप निर्मल शुद्ध सच्चिदानन्द घनसुप्रकाश है कहो अथवा न कहो जबतक ये अनर्थ बिकार दूर नहीं होते शांति पदकी प्राप्ति नहींहोती लोक रंजना की बासना करके पढ़ सुन ज्ञान संबाद करना भगवद्भजन और साधनों का छोड़ देना बिषय भोग निंदा व्यवहारादिकोंमें प्रवृत्त रहना और सद्गुरुकी तलाश न करना अपने रोग और विकारों को न देखना औरोंके दोष विकारों को देखना मूर्ख और मलीन संस्कारियों का काम है सो जन्मानु जन्म का दुःखदायी है ऊपर के मकान पर जो कोई बिना सीढ़ी कूदकर चढ़ेगा सो गिरेगा केवल मीठे मीठे कहने से मुंह मीठा नहीं होताहै खानेसेही तृप्ति होतीहै भगवत् नाम स्मरण से यह बात समझी न जाइ हरि गुरुकी कृपा करके और निर्मलता संस्कारकरके अपना कियाभया पुरुषार्थ सिद्धहोताहै सो अलंबुद्धि श्रवणादि करके रहजाना अथवा भगवत्की कृपापर रख और मनन निदध्यासनादिक साधन न करना राग द्वेषमय व्यवहारादिक में रहना हानि का कारण है किसलिये कि

शुद्धअद्वय सच्चिदानन्दात्मा और व्यवहार संसारमें अ-
त्यन्त प्रातिकूलता और विरोधहै जबतक साधन चतुष्टय
साधेनहीं तबतक निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती इस-
लिये जबताईं निर्विकल्पतान होय यत्न करना चाहिये
गुरु वेद वाक्यानुसार साधन अवस्था में रहकर अप-
ने हृदय रूपी पात्र को साफ़ करता रहै विषय रस में
अथवा मोह आलस करके अथवा तितिक्षा को दुःख
रूप जानके रह जाना धाम पद से रहजाना है जैसे
रास्ते चलनेवाले थक करके सो रहेहैं और रास्ते च-
लने का दुःख सह न सके हैं तौ क्योंकर मंज़िल पै प-
हुंचेंगे प्रथम श्रद्धा और विश्वास बढानेमें और मोह वि-
षय के घटाने में पक्का होकर सत्संग और विचार करना
चाहियेजिससे तीव्र वैराग्य उत्पन्न होय अध्यात्म विद्या
की उत्पत्ति और स्थिति होय ॥छन्द॥ हेशुद्ध तत्त्व जग-
द्गुरू करुणानिधान कृपाकरो। अन्तस मलिनता मं-
दता त्रय ताप दोषममताहरो॥ हरि गुरू से ऐसा आ-
राधन करै मुख्य लक्षण शिष्य अधिकारी का तौ प्रथम
एक यही जानना चाहिये कि जिस को विषय भोगों से
चित्तमें ग्लानि हो और संसार से उपरामताहो जन्म म-
रणै जरादिक रोगों को दुखदायी जानकर अन्तःकरण
के रोगों के मिटावने में यत्न प्रपन्न होय नित्य सुख मोक्ष
की इच्छा का दृढ़हो ऐसा जो होगा तौ उसको नित्या-
नित्य वस्तु विवेकादिक चारोंसाधन सहज में ही प्राप्त
हो जावेंगे और सत्संग और मनन निदिध्यासनभी उस
से बनेंगे और सद्गुरु भी उसे मिल जावेंगे प्रथम

भूमिका शुभ इच्छाहै जिज्ञासा और शुभ श्रद्धा को बढ़ावना चाहिये हृदय अन्तःकरण में द्रवता चाहिये जैसे मट्टीसनी हुई होती है कि जिसका सब कुछ बन सक्ता है और विशेष करके संशय विपर्य्यय कुतर्क भी चित्तमें न होय और वेद वाक्य और महात्माओंके वाक्योंमें विश्वास हो और कार्य अकार्य्य का वर्त्ताव शास्त्रानुसार हो ऐसे शिष्य को चाहिये कि सात्व की श्रद्धा को दृढ़ करके सद्गुरु की शरणं जाय यद्यपि आप वेद शास्त्र पढ़ा भी होय और बुद्धि भी तीक्ष्णहोय तदपि सद्गुरु की शरण होना उपदेश लेना अवश्य है वेदकेअर्थ समुद्रवत्हैं सद्गुरु ब्रह्मवेत्ता बादलरूपहैं समुद्रकाजल खारी होनेसे सुखसे ग्रहणनहीं होताहै न प्यासजातीहै जब बादल ग्रहणकरके बरसतेहैं तभीमिष्टता संयुक्त होय सुखसे ग्रहणकिया जाताहै और तृषाभी मिट जातीहै गुरुके लक्षण पहिले लिखे गये हैं ऐसेगुरुके पास वासकर गुरुकी सेवा करै और अपनी सेवासे प्रसन्नकरै गुरुकोईश्वरसेभीअधिक माने उनके वाक्य में विश्वास कर उपदेश अनुसार साधन करने में पुरुषार्थ करै सो ऐसे शिष्य अधिकारीके प्रश्न और सद्गुरुके उपदेशरूपी उत्तर को जो महात्माओंसे सुनै यह युगलकिशोर शरण जिसको जगनकिशोर भी कहते हैं राय हरिकिशोर का पुत्र चित्रगुप्त बंशीभटनागर कायस्थ सिकंदराबाद का बासी लिखता है परमात्मा अनुग्रह कारिपूरण सफलकरै ॥शिष्यप्रश्न॥ हे भगवन् जो आपने कहा कि मनुष्य देहमेंही मोह निद्रासे जागनेका साधन बनसक्ता है सो मैं पूछूं हूं कि

मोहरूपी निद्रा क्या है और उस से जागना और भव सागरसे पार होना और सुखके किनारेपर पहुँचना क्या है और उसके साधन क्या क्या हैं मैंकौनहूं देह हूं या जीव हूं और जीवात्मा और परमात्माका क्या स्वरूप है माया और ईश्वर का क्या स्वरूपहै ॥ आचार्य्य सद्गुरु सातोंप्रश्नका उत्तरसमझातेहैं ॥ हे शिष्यसावधान होकर सुन एक आत्मा चैतन्य परिपूर्ण जिस को परमेश्वर कहते हैं अचिंत्य शक्तिवाला है एक ईक्षण शक्ति एकसे बहुत होजानेकी भी उसकी शक्ती है उसी इच्छाका नाम मायाहै उसके दो दो अंग हैं ज्ञानशक्ति करके विद्या अपोषण शक्ति करके अविद्या अविद्या के अर्थ पहिले कहि आये हैं उसी को अज्ञान अन्यथा भानभूल भ्रान्तिभी कहते हैं तिस अविद्यासे भया अहंकार अहंकार से भया मोह ताकरके अपने निजस्वरूप का ज्ञान तो भूलगया देह और घट पट आदि संसारी व्यवहार का ज्ञान होगया यही मोहरूपी निद्राहै जो सुख दुःख क्रिया जगत् की भान होती है यही इस निद्रा के स्वप्न हैं जिसमें ये प्राणी जन्मानुजन्म से सोया भया जन्म मरण आदिक दुःख भोगरहा है इस निंद्राका नाश होना और ज्ञानरूपी जाग्रत में स्थित होना अर्थात् अपने आत्माको सच्चिदानन्द स्वरूप अकर्त्ता अभोक्ता नित्य निर्विकार निश्चयकर उसीमें अपनी वृत्तियों का प्रवाह करना यही मोहरूपी निद्रा से जागना है और यह जगत् एक समुद्र जन्म मरण जरा रोग चिन्ता आदिक जल करके भराहुवा हैं इस समुद्र का किनारा

सच्चिदानन्द घन शांत सुख स्वरूप परमात्मा है उसी
की कल्पना का फैलाव यह संसारसागर है ईश्वर आ-
राधन और श्रवणादिक साधन और वैराग्य औरबिचार
इस समुद्र की नौका हैं सद्गुरु ब्रह्मवेत्ता मल्लाह हैं
जिसको इस संसारसागरसे पार होने की इच्छाहो वो
इन नौकोंपर चढ़कर सद्गुरुकी कृपासे सुखके किनारे
पर पहुँच सक्ता है अपने आत्मा का ज्ञान यही सुख
का किनारा है और जो तैंने साधनों के वास्ते पूंछा है
सो साधन वेदने वर्णन कियेहैं परन्तु उसके अनुसार कु-
छ संक्षेप करके हम भी कहतेहैं प्रथमतो इस मनुष्यतनु
धारी को गुरू और वेद के वाक्य पर श्रद्धा और बि-
श्वास चाहिये जिस जिस क्रियाका त्याग औरजिसजि-
स कर्म का ग्रहण महात्मा गुरू वेद कहते हैं उस का
वर्त्ताव करना चाहिये निषेध और अशुभ कर्म चोरी
हिंसा निंदा झूठ बोलना परस्त्री गमन आदिककी ओर
मन और तनुको जाने न दे इस बिचारसे कि शास्त्र स-
त्यहै थोड़े से स्वादके वास्ते जन्मानुजन्म अधम गति
का दुःख भोगना पड़ैगा बिचार अभ्यास और वैराग्य
से अपने मनको बश में करना चाहिये और वेद विहित
वर्णाश्रम धर्म और नित्य नैमित्त शुभकर्म श्रद्धाविधि
पूर्बक बिना फलकी चाहके पुरुषार्थ करतारहे सकाम
कर्म जो शास्त्रमें कहे हैं इनमें लोभ न करना चाहिये
क्योंकि ये बंधन के हेतु हैं और निष्काम कर्म अन्तःक-
रणकी शुद्धिद्वारा मोक्ष का हेतु है शास्त्र ने मूर्खों कीरु-
चि बढाने के वास्ते स्वर्गादिक के फल दिखाये हैं ता

कारण उस अल्पसुख की ओर मन को नहीं लुभाना
तीसरे सदैव अपने अन्तःकरण के खोटों पर दृष्टि
रखना दुर्वासना को हटावतारहै मन इंद्रियों का निरोध
करतारहै पूर्व्व और वर्त्तमान जन्म में जो पाप कर्म बन
गये हैं उनका प्रायश्चित्त करै अदृष्टि अशुभ कर्म का
मुख्य प्रायश्चित्त भगवद्भजन और गंगा स्नान है जिस
करके अनेक जन्मों के पाप कर्म नाश को प्राप्त होतेहैं
नित्य कर्म ये हैं कि पिछले पहरसेरात्रि को जागना यथा
शक्तिमान संध्या न स्मरण गुरु देव और उपासकदेव-
का करना फिर शौचसे निवृत्त होकरके प्रातःकाल की
संध्याउपासना तांत्रोक्तऔरवेदोक्त करकेगायत्रीकाजाप
करना मध्याह्नकालमें मध्याह्न संध्याकरपंचग्रासी बलि
वैश्वदेव अतिथि भागकरके भोजन करना फिर सायं-
काल को सायंकालकी संध्या उपासना करना और जो
नियम जप पाठ आदिकका हो सो करना नैमित्त कर्म
पितृ श्राद्ध तीर्थ पर्व ग्रहण समय जपहोम ब्रह्मभोजना
दिक यथा शक्ति भगवत् जन्म दिवसके उपवासअष्टमी
एकादशी आदिकके व्रत इन नित्य नैमित्तिक कर्मकरने
से नित्यके पाप दूरहोतेहैं न करने में पापबढ़तेहैं चौथे
दैवी संपत्ति और आसुरी जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने
१६ सोलहवें अध्याय गीताजी में अर्जुन प्रति उप-
देश कियाहै आसुरीका त्याग दैवीका ग्रहण करताजाय
कुछ संक्षेप करके यहां भी लिखा जाताहै त्यागके योग
येहैं काम १ क्रोध २ लोभ ३ मोह ४ निंदा ५ हिंसा ६
ईर्षा ७ मत्सरता ८ चोरी ९ परस्त्रीगमन १० झूंठबो-

लना ११ दंभ १२ गर्व १३ पाखण्ड १४ वैरभाव १५ ग्रहण के योग येहैं दया १ शील २ संतोष ३ ब्रह्मचर्य्य ४ आर्ज्जवता ५ क्षमा ६ सत्यबोलना ७ सत्यव्यवहार करना ८ मन इन्द्रियादिक को बश में रखना ९ गुरू साधुओंकी सेवा १० औरों को मान देना ११ आप अमान रहना १२ सत्संग और शुभ बासना रखना १३ परमेश्वर का नाम स्मरण करना १४ और बहिरंग अन्तरंग साधन पहिले भी हम कहि आये हैं जब ताईं निर्विकल्पता प्राप्त न होय शुभ कर्म और साधन करने में पुरुषार्थ करना चाहिये और इस कालमें तप यज्ञादिक विशेष साधन जो नबनसकैं तो परमेश्वर की सच्ची भक्ति और नाम स्मरण और सच्चा व्यवहार सुगम उपाय है जिससे अपना घर बनारहै और अन्तःकरणकी शुद्धी होती जाय भक्तिके प्रतापकरके समे सिर बिना कठिनाई के ज्ञान की प्राप्ति होय परमद का भागी हो जायगा भक्ति के दो अंग हैं। अपरा और परा अपरा साधन रूपा है और परा फलरूपा है अपरा भक्ति के ९ अंग शास्त्रने कहेहैं प्रथम संतों का संग सेवा १ दूसरे श्रवण भगवत् कथा का २ तीसरे गुरु सेवा है ३ चौथे कीर्त्तन गुणानुबाद महाराज के हैं ४ पाँचवें नाम का जपना और जप मूलमंत्र गायत्री का ५ छठें शील सन्तोष और शौच ६ सातवें अपने दोषों पर दृष्टि रखना परा ये दोषों को न देखना ७ आठवें छल झूंठ न रखना सत्य बोलना सच्चा व्यवहार रखना ८ नवें सबमें परमेश्वर का रूप देखना और परमेश्वरकाही भाव आसरा

रख शरणागत भाव उपजाना सगुणब्रह्ममें स्वाभाविक प्रेम होना लक्षण परा भक्ति काहै जो नवधा भक्ति के साधनों करके प्राप्त होता है इस अपरा भक्ति के साधनों करके अन्तःकरण का शुद्ध करना अवश्यहै अशुभ बासना और मलीन वृत्तियों का मिटावना दोष दृष्टि और अन्तरके विचार से बनता है जैसे काम करके मलीन वासना परस्त्रीलंपट होने की वृत्तिजो चित्तमें उपजै तो उसके दोषों का देखना और प्रणाम को बिचार कर मनको रोंकना और ब्रह्मचर्य्य का अभ्यास करना चाहिये स्त्रीपाप अग्नि की ज्वाला होती हैं मनुष्यों को घासकी नाईं जला देती हैं वर्त्तमान कालमें बल आरोग्यता तप तेज को हरती हैं और अनेक ताप और दुःखरोगों को दिखावती हैं और परिणाम में सूखी लकड़ी की नाईं नरक की अग्नि को बढ़ावती हैं दूसरे जन्म में कूकर शूकर बनावती हैं ऊपर से चमड़ा ढका हुवा है भीतर मलमूत्र हाड़ मांस दुर्गंधता लियेहुये भराहुवा है इस रीति के विवेक और विचारसे चित्तको स्त्रियों मेंसे हटायलेना ॥ क्रोधरूपी वृत्तिजो उपजैतो क्षमा का अभ्यास करना और उसके दोषों को ऐसा बिचारै कि क्रोध अपराध करनेवाले पर होता है तो सब से बड़ा अपराधी इसक्रोधही को समझो क्योंकि धर्म अर्थकाम मोक्ष चारों पदार्थ का नाश करनेवाला और अपने शरीर का जलानेवाला है तो उस क्रोध अपराधीपर क्रोधकरके चित्त अपने से बाहर निकाल देना दूसरे अपनी निंदा सुनकरभी अन्तःकरण में क्रोध

रूपी क्षोभ होता है वा समय उस बात को विचारना चाहिये कि जो दूसरे का चित्त जो मेरी निंदा करके ही प्रसन्न होयतौ बिना यत्न और बिना सेवा और बिना धनके उसके मन की प्रसन्नताई का फल मिला तिस-पर भी निंदा करनेवाला बदला नहीं चाहता इससे उपरान्त निंदक का उपकार मातासे भी विशेषहै माता मलको हाथों से धोती है निंदा करनेवाला जिह्वा से धोता है पाप को हरता है और अपने पुण्य को देताहै निंदक की बराबर कोई हित हेतु नहीं है इस विचारसे क्रोध रूपी वृत्ति को हटावना चाहिये ॥ धन के वास्ते जो लोभ रूपी वृत्ति चित्तमें उपजै तौ धनके दोषों पर दृष्टि करके सन्तोष का अभ्यास करना चाहिये क्योंकि धन बहुत दुःख और श्रम करके और अनर्थों का भार शिरपर रखने से मिलता है सोभी जो प्रारब्ध में होय तौ मिलता है और शोचना चाहिये कि अपने उदर पूर्ण निमित्त केवल आधसेर आटाही होताहै स्त्री पुत्र भ्रातादिक कुनवेवाले यारआश्ना व नौकर चाकर हाथी घोड़े किये सब अन्तरीय ठग और नाशवान् हैं खाय उड़ाय जाते हैं और एक विकार इसमें यहभी है कि जितनी अधिकता धनकी होय उतनी तृष्णा और विषयादिक की और मद अभिमान की वृद्धिता और रक्षा की चिंता अन्तःकरणमें बढ़तीजातीहै संचितकादुःख और श्रम और रक्षाका और खर्चका शोच चोरी होजानेको भय वर्त्तमान कालमें और परिणाम में अनर्थों का फल भोगनाहै इसविचारसे इस वृत्तिको चित्तसे बाहरकर स-

न्तोषका अभ्यास बढ़ाताजाय॥ मोहकी वृत्तियांजो अपनेदेह और देहके सम्बन्धियोंके चित्तमें उपजें,तो परिणाम वियोगादिकोंके दुःखदोषोंको विचारनाचाहिये क्योंकि कालरूपी व्याल सबकेपीछे लगाहुआहै विशेष मोहपुत्र का होताहै विवेककर उसके दोषों को बिचारकर वैराग्याभ्यास करनाचाहिये दोष यह है जबतक पुत्र उत्पन्न नहीं होताहै माता पिताको तृष्णारूपी चिन्तारहतीहै गर्भरहा तब गर्भ के गिरजाने का शोच रहताहै जब पुत्र का जन्म भया तब द्रव्य का ख़र्च और शीतला मशानादिक रोगों का उपाय करने में दुःख और श्रम उठाताहै फिर पढ़ने लिखने व्यवहारादिक में मंदहुआ और नालायक़ और मूर्खहुआ तो उसका दुःख दारुण हृदय को जलाता रहै जो पुत्र अपने सामने मरगया तौ प्राणों का हरनेवाला भया आप उसके सामने मरगये तो उसके मोहमें वृत्ति बनी रही और वियोग का शोक सहना पड़ा यह पुत्र गर्भ में तो स्त्री को हरताहै जन्म लेकर धनको हरताहै मरता भया प्राणों को हरताहै पुत्रीभई तो जो हानि और शोच और ख़र्च ऊपर लिखेगये उसके सिवाय और यह होता है कि यह अपने घरमें भी नहीं रहती सन्तान कुपात्र हुई तो अपने दुःख के सिवाय पित्रोंका भी दुःख दायी हुआ इस बिचार से मोहको दूर करना चाहिये अपनी देहके मोहमें यह बिचार चाहिये कि शरीर क्षणभंगहै आगे को कुछ सहायता नहीं मिलेगी देहधारी के शिर पर पापों की गठरी रख आप नाशको प्राप्तहो जाता है इसलिये नित्य प्रति मृत्यु का सुमिरण रख मलीन बास

नाओं से मनको हठावना अवश्यहै और ऐसा नियम करना चाहिये कि जो श्वास निकले बिना नामके न निकलै योग का वियोग जीवने का मरना अन्तहै समय पाय कर ब्रह्मा इंद्रादिक का भी नाशहोजाताहै यह जगत् भी उत्पत्ति और नाशहोता रहता है रावण सरीखे राजा चक्रवर्त्ती धूलिकी नाईं कालकी आंधीमें उड़गये और मनुष्यों की क्या सामर्थ्य और क्या जीवनेकी आश है ताकारण विद्या और श्रेष्ठकुल और राज्य और धन पाय कर अभिमान नहीं करना और किसीको न सतावना विद्या का फल गरीबी और नम्रता है राज्य काज धन का फल परोपकारता और दान और नीति है मन को अपने बशमें करदैवी संपत्तिके मार्गपर चलना चाहिये मन के आधीन आप न होना चाहिये। हे शिष्य यही मन अपना बैरीहै बन्धन के हेतु होने से यही मन अपना मित्र है शुभ कर्म करने और प्रभुके स्मरण करने से इसी मनका माना हुवा यह संसार है बन्धमोक्ष सुख दुःख सबकी जड़ यही मन है और बड़ा यह चंचल है इसपर सब काल दृष्टि रख सावधान रहना चाहिये शुभकर्म और उपासना करते करते जब शुद्ध और निरोध होजाय तब सद्गुरु कृपाकर क्षणमात्र में आवरण दूरकरसक्ते हैं सर्व दुःख अनर्थों की निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति मोक्षपद यही है प्राणी को चाहिये कि सद्गुण को बढ़ावता जाय रजोगुण तमोगुण को जो बन्धके हेतु हैं घटावता जाय सतोगुणकी प्रबलता करके जब इसको ज्ञान द्वारा ब्रह्माकार वृत्ति

होजायगी तब सतोगुण भी जाता रहेगा सतो गुणके सेवन में दश प्रकार शास्त्र ने वर्णन किये हैं शास्त्र का श्रवण १ जिसमें निवृत्ति वेदान्त आदिक सात्विक हैं राजसमें प्रवृत्ति शास्त्र कर्म फलादेशहै तामसमें पाखंड और विषय काम शास्त्रादिक दूसरा प्रकार देशका है व्यक्त देश अर्थात् एकांत और प्रभुके धामादिक सात्विकी देश कहलाते हैं राजधानी राजस है ग्रामादिक तामस हैं तीसरा प्रकार जन है साधु सन्तजन निवृत्ति सात्विकी जन हैं व्यवहारी राज काजवाले राजसी जन हैं मूर्ख दुराचारी तामसी जन हैं चौथा प्रकार जल है गंगा आदिक तीर्थ जल सात्विकी है कूपजल और सुगंधी जल राजसीहै मधुरादिक जल तामसी है पांचवां प्रकार काल है ब्रह्म मुहूर्त्त पांच ५ घड़ीरात रहेसे सूर्य के प्रकाश तक सात्विकी है और काल दिनका राजसी है रात्रि अर्द्धरात्रि तक तामसीहै छठांकर्म नित्य नैमित्त शुभ कर्म्म निष्कांम सात्विकी है तप यज्ञादिक सकाम राजसी है अनुष्ठानादिक कर्म जो किसी के दुःखहेतु के हों तामसी हैं सातवां जन्म जो दीक्षा में दूसरा जन्म गिना जाता है विष्णु शिव शक्ति दीक्षा सात्विकी है क्षुद्र देवता दीक्षा राजसी है भूत प्रेतादिक की दीक्षा तामसी है आठवां प्रकार ध्यान है सगुण ब्रह्म विष्णु शिव शक्ति राम कृष्ण अवतारादिक सात्विकी ध्यान है स्त्री पुत्रादिक राजसी है बैरी आदिक तामसी है नववां मंत्रहै प्रणव और गायत्री आदिक सात्विकी मंत्रहैं अपर देवताओंके मंत्र जो सकाम हैं सो राजसी हैं भूतादिक मंत्र

तामसी हैं दशवां संस्कार अपने अन्तःकरणका शोधन सात्विकी है अपनी देहका शोधन राजसी है गृहादिक का शोधन तामसी है इसरीति करके सतोगुणी पदार्थों का ग्रहण राजसी तामसी से त्याग होना चाहिये और बिशेष रीति इन तीनों गुणों की अठारहवें अध्याय भगवद्गीता में लिखी हुई है हे शिष्य जो तैंने तीन प्रश्न मोह निद्रा से जागने और सुख के किनारे पर पहुँचने और साधनों के किये तिनका उत्तर हो चुका और जीवात्मा और परमात्मा और माया और ईश्वर और संसार के जो चार प्रश्न तुम्हारे हैं तिनका हम उत्तर कहते हैं यही अध्यात्म विद्याहै जो शुद्ध अन्तःकरणमें ठहरकर फलदायक होती है इस अन्तसकी ही शुद्धिके हेतु धर्म और कर्म और साधन अधिकारी प्रति अनेक प्रकार के गुरु वेद कहतेआये हैं अन्तःकरण शुद्धिहुये पीछे यत्न करने की कुछ ज़रूरत नहीं है इस जीवात्मा का केवल एक धर्मही सहायक और साथी है और कोई नहीं है आत्मा अनात्मा में तम प्रकाश की नाईं परस्पर विरोध है अनादि कालसे जो वृत्तियों का प्रवाह अनात्माकी ओर चलाआताहै उसके हटावनेकेवास्ते साधन और बिचार हैं और अनात्माकी तरफ़से प्रवाह को हटाके आत्मा की तरफ़ लाना अवश्य है किसालिये जिसको पूर्व की ओर जाना है तब पश्चिमकी ओर चलने से पूर्व नहीं मिलेगा अब अपने प्रश्नों का उत्तर सुनो कि वास्तवमें तो यह देह और यह संसार और यह माया और ईश्वर और जीव कल्पना किया हुआ

अपने अद्वितीय आत्मा का है जैसे समुद्र और समुद्र की लहर नाम रूप मिथ्या माना हुआ मनकी भ्रांति करके जेवरी सर्पकी नाईं है देखो जेवरी में सर्प न पहले था न अबहै न होगा जब जेवरी का ज्ञान होताहै उसी क्षण सर्प्पकी भ्रांति दूर होजाती है परन्तु तुम्हारे समझाने के हेतु संसार और माया और जीव और ईश्वर की उत्पत्ति कही जाती है कि जब अद्वय सच्चिदानन्द परमात्मा परिपूर्ण को एक से बहुत रूप होने की इच्छा भई वोही इच्छा त्रिगुणात्मक माया कहलाई जाती है सो वो अपोहन शक्ति उसी अद्वय ब्रह्मकी है उस माया के दो २ अंग भये एक शुद्ध सत्वमय जिसको विद्या कहते हैं दूसरा अंग मलिन रजतम मिला हुआ जिसको अविद्या कहते हैं मानों उस इच्छारूपी बीजसे दो अंकुर की उत्पत्ति हुई विद्या अविद्या परा अपरा शुद्ध मलीन ईश्वर जीव ज्ञान अज्ञान शुभ अशुभ पाप पुण्य धर्म अधर्म गुण अवगुण स्वर्गनरक ऊर्ध्व अध बन्ध मोक्ष सुख दुःख तम प्रकाश सुर असुर जड़ चैतन्य आदिक दो २ भाग एक उत्तम दूसरा निकृष्ट होते गये माया उसीको कहाजाता है कि वास्तवमें तो कुछहो नहीं और प्रतीतहुये मायासत्यभी कहीनहींजातीहै क्योंकि वास्तव में कुछ पदार्थ नहीं है सत्य का नाश नहीं होता इसका ज्ञानसे नाशहोताहै और असत्यभी नहीं कही जाती कि प्रत्यक्ष प्रपंच रूप नाना भांतिका भान होता है असत्य वस्तु भान नहीं होती और सत्य असत्य भी परस्पर विरोधहोने से नहीं कहसकते हैं किन्तु अनिर्वचनीय शक्ति

उस ब्रह्म अद्वय तत्वकी है सो शुद्ध सत्वमय माया में अद्वितीय परिपूर्ण चैतन्य का आभास ईश्वर कहलाया उससे आकाश आकाश से बायु बायु से अग्नि अग्नि से जल जल से पृथ्वी ये पांच महाभूत उत्पन्न हुये जिससे पंचीकरण होकर पिंड और ब्रह्माण्ड रचे गये और मलीन अंग माया में जिसको अविद्या कहते हैं उसी अद्वितीय चैतन्य का आभास जीव भया वो विंब आप अद्वय तत्व परिपूर्ण अपने प्रतिबिंब से ईश्वर जीवको करता भया जैसे दो घट जलके भरे हुये हैं एकमें शुद्ध निर्मल जल है एकमें गँदला जल है दोनों में एकही सूर्य्य का प्रतिबिम्ब है निर्मल जलमें जलको दबाकर अच्छा प्रकाश करता है और गँदले में गँदलापन से दबाहुआ छोटासा मलीन दीखता है इसी तरहसे ईश्वरकी उपाधि शुद्ध माया है ईश्वर सर्वज्ञ शक्तिमान् शुद्ध तत्व समर्थ सर्व व्यापी सत्य संकल्प अपने निज स्वरूप और सबोंके स्वरूप को जानता भया प्रकाशकर रहा है माया उसके वश में है वो माया के वश नहीं है आप अकर्त्ता अभोक्ता है जीवों के किये भये कर्मोंका फल देनेवाला है वोही विष्णु है वोही शिव वोहीं ब्रह्मा वोही पुरुष स्वरूप वोही शक्ति स्वरूप है वोही ईश्वर भक्ति विवश धर्म हेतु अवतार धारण कर लीला करता है जैसे इस लोकमें देहादिक का पालक और रक्षक और दण्ड का देनेवाला राजा होताहै पुरुषोत्तम शुद्ध निर्विकल्प चैतन्य निर्गुण निराकार साक्षीमात्र ईश्वर और जीवका है ईश्वरका स्वरूप तौ वर्णन हुआ अब

देह और देहधारी का स्वरूप सुनो जीव की उपाधि म-
लीन अविद्या है तिसके वश होकर अपने स्वरूप को
भी भूलगया है दूसरे को भी नहीं जानता कर्ता भोक्ता
पापी पुण्यात्मा मानता हुआ जन्म मरण रूप संसारी
हो रहाहै सो जीव की कारण उपाधि अविद्या है सोई
कारण शरीर कहलाती है अपने स्वरूपानन्द देखने
वाले होनेसे आनन्दमय कोश कहलाता है अपनाजीव
सब प्राणी मात्रको अत्यन्त प्रिय है यही आनन्द कह-
लाता है और कारणके गुण कार्य्यमें होते हैं सो ये पंच
महाभूत भी सत रज तम त्रिगुण मय हैं उन के न्यारे
न्यारे सात्विक अंशते श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा पांच ज्ञान
इंद्रियां होती भई और मन बुद्धि चित्त अहंकार इनसबों
के मिले भये सात्विक अंश के भीतर के अंतःकरण होते
भये पांचो ज्ञानइंद्री मिली भई बुद्धि विज्ञान मय कोश
कहे हैं और ज्ञान इन्द्री मिला भया मन मनोमय कोश
कहिये है और दोनों के कारण होनेसे चित्तका मन में
और कर्त्ता होनेसे अहंकार का बुद्धिमें प्रवेश जानना
इसलिये चित्त अहंकारके न्यारे कोश नहीं हैं और पंच
महाभूतों के न्यारे न्यारे रज अंश से हाथ पांव वाक्य
उपस्थ गुदा ये पांच कर्मइन्द्री होती भई और मिले
भये रज अंशसे प्राण होतेभये सो प्राण अपान व्यान
उदान समान क्रिया भेद करके पांच नाम कहलाये सो
प्राण कर्मेन्द्री करके प्राणमय कोश भया इस प्रकार वि-
ज्ञानमय मनोमय प्राणमय जीव के कार्य उपाधी हैं इसी
से १७ सत्तरह तत्त्व का लिंग शरीर है उसी को सूक्ष्म

और पुरीयाष्टक और कृतबाहक कहतेहैं सो अपंचीकृत है अदृष्टहै सतोगुण ज्ञान शक्तिधारे हुयेहै जानने के पदार्थ उसके अंशसे हुये रजोगुण विक्षेप और क्रिया शक्ति धारेहुये हैं क्रियावाले पदार्थ उसके अंश से हुये पांचों महाभूतों के तम अंश जो रहे तिनके एक एकही में दो दो भाग करके फिर आधे आधे भागमें चारअंश करके अपने अपने बड़े भागसे और दूसरोंके छोटे अंशोंके मिलावने से पंचीकरण होतेभये पंचीकृत भूतों से स्थूलदेह और ब्रह्माण्ड और एक एक ब्रह्माण्डमें चौदह चौदह लोक होतेभये तिनमें ७ सात लोक भूर्भुवःस्वः महर्जन तप सत्य ऊपरके होतेभये अतल सुतल वितल तलातल रसातल महातल पाताल ये सात लोक नीचे के होतेभये उन लोकोंमें देवता मनुष्य राक्षस पशु पक्षी आदिक देहधारी बसते भये चार खानि करके सृष्टिकी उत्पत्ति होतीभई जो पृथ्वी को फोरकर वृक्षादिक निकलते हैं सो उद्भिज कहलाते हैं मच्छर खटमल जूं आदिक पसीने से पैदा होते हैं वे स्वेदज कहलाते हैं पक्षी सर्प मच्छी आदिक अंडज कहलाते हैं और मनुष्य पशु आदिक जरायुज कहलाते हैं पंचीकृत महाभूत से जो भया स्थूल देह सो भोगका स्थान कहिये है माता पिता करके खाया भया अन्न उसके रससे वीर्य्य और रुधिरहोताहै तिससे यह देह बनतीहै और अन्नहीके रस करके बढ़ती है सो यह आत्माका स्थूल शरीर अन्न मय कोश कहिये है मोह ममता का तंतुकर्त्तृत्व भोक्तृत्व समस्त प्राणी मात्रके अन्तसमें फैलाहुआहै इसीका नाम संसार

है सो सत्व अधिष्ठान के विषय मिथ्या प्रपंच कार्य्यक-
ल्पनारूप अध्यारोपहै जैसे जेवरीमें सर्पका आरोपहोता
है वोही अद्वितीय ब्रह्म नानारूप भानहोताहै हेशिष्य जो
तू यह पूँछताहै मैं कौन हूं सो तू सूक्ष्म दृष्टिसे अपने मन
में विचारकर तू भी जाने है और सब जानते हैं और
कहते हैं कि मेरी देह मेरे हाथ पांव मेरा मन मेरी बुद्धि
मेरे प्राण यह कोई नहीं कहता है कि मैं देह और मैं
बुद्धि आदिक हूं तो फिर तेरा स्वरूप इन देहादिक से
तो न्यारा ठहरा और तू भी जाने है और भी सब जा-
नते हैं कि पूर्व्व जन्ममें जो हमने कर्म्म किया इस जन्म
में तिसका यह फल भोगते हैं और अब जैसा करेंगे
आगे भोगेंगे तो तीन जन्म का ज्ञाता तू आप इस देह
से न्यारा ठहरा यह देहतो एकही जन्ममें नाशहोजाती
है देह के साथ तेरा नाश नहीं होता और होतो आगे
संचित कर्म्म को कौन भोगे तीसरे जो देह का धर्म उ-
त्पन्न होना नाश होना बढ़ना घटना सोवना जागना
बाल तरुण वृद्ध होना है सो तुझमें नहीं तू सदा एक-
सा बना रहता इस लिये तेरा स्वरूप देह नहीं है और
जीव का स्वरूप अज्ञान करके कल्पित है सो ऊपर हम
कहि आये हैं इसलिये तेरा स्वरूप न देह है न जीवहै
न मन है न बुद्धि है न लिंग शरीर है तेरा निज स्वरूप
चैतन्य सबका जाननेवाला है सबको सत्ता और प्रकाश
देनेवाला है साक्षी सच्चिदानन्द ज्ञान स्वरूप अखण्ड
अजर अमर नित्य निर्विकार है अपने स्वरूपको भूल
करदेह मनबुद्धि आदिकके धर्म मिथ्या अपने ऊपरआरो-

पितकर दुःख मान रक्खाहै अबअद्वय नित्य चैतन्यपरि पूर्ण का आख्यान सुनो जो अद्वय ज्ञान है वेदान्ती उसी को ब्रह्म कहते हैं योगी परमात्मा कहते हैं भक्तजन उपासक विष्णु शिव शक्ति रामकृष्णादि कहते हैं तत्त्वके जानने हारे उसीको तत्त्व कहते हैं सो वो एकही है उसका स्वरूप यह है कि असत् जड़ दुःख अनात्मा दृश्य परिच्छिन्न देहादिक प्रपंचतिससे उलटा सत्चित्आनंद आत्मा द्रष्टा साक्षी चैतन्य परिपूर्ण ज्ञान स्वरूप जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदिक प्रपंचका प्रकाशनेवाला जो मन इन्द्री आदिक का विषय नहीं अद्वय चैतन्य नित्य अखण्डहै सो अपनाही स्वरूप जाने उससे न्यारातू नहींहै जन्ममरण तुझमें नहीं हैं यह धर्म शरीर के हैं भ्रम से जो भया अभ्यासता करके बुद्धि देहादिक के धर्म अपने में मानकर सुखीदुःखी होरहा है पराये धर्मों का मिथ्या अभ्यासजो जन्मानुजन्म से चला आता है दृढ़ प्रयत्न करके सद्गुरु और वेद वाक्य के विश्वास करके तिसको त्यागकर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में निमग्न होजा तेरा स्वरूप यही है अनादि कालकी अविद्या करके जो तेरे में रागादिक विकार बढ़ रहे हैं उनकाही दूरकरना मोह रूपी निद्रा से जागना और सुख के किनारे पर पहुंचना है ॥ प्रश्न २ दूसरा ॥ हे भगवन् आपने ज्ञान के साधनों में जो प्रथम शुद्ध होजाना अन्तःकरण का वर्णन किया है सो मैं आप से पूछूं हूं कि शुद्ध अंतष्करण वाले के क्या लक्षण हैं और उस को क्या कर्त्तव्य है और जिसका अंतष्करण मलीन है उनके

क्या लक्षण हैं और उनको क्या करना चाहिये उत्तर कहते हैं॥ हे शिष्य तैंने अच्छा प्रश्न किया सुनु जिसका अंतष्करण पूर्व सुकृत साधन करके शुद्ध है उसके ये लक्षण हैं कि आदि से ही प्रवृत्ति मार्ग से हटकर निवृत्ति की ओर चलैगा और उसके चित्तमें विषय भोग राग द्वेष संसारी व्यवहार से उपरामता और वैराग्य होगा और सत्य शास्त्रके श्रवण और संतसंग साधु सेवा आदिक में अनुराग होगा मोक्षकी इच्छा दृढ़ होगी काम्य और निषेध कर्मों से चित्त हटा हुआ होगा उसको सद्गुरु ब्रह्मवेत्तासे उपदेश लेनाचाहिये बहिरंग साधनों की उसको ज़रूरत नहीं है परन्तु इस काल में विद्यावान् और चतुर ऐसे भी होते हैं कि वेदान्त को कथन करके अपने को बाहर से अच्छा दिखलाते हैं भीतरसे कामादिक और मन इन्द्रियादिक के वशी भूत हैं कर्म उपासना आलस्य करके छोड़ देतेहैं सो ऐसे नर शुद्ध अंतःकरण के लक्षणों में नहीं समझना अंतर्य्य वृत्ति और निर्मलता बुद्धि और कर्म धर्म शास्त्र अनुकूल और विषय और निंदा हिंसा से वैराग्य विचार और संतोष और तितिक्षा सहित हरि गुरु साधु सेवा होय उसकी गिनती शुद्ध अंतस वालों में है और जिसने इस जन्म मेंहीं अंतःकरण की शुद्धि के हेतु निषेध और सकाम कर्म त्याग कर शुद्ध वासना संयुक्त सुकर्म वेद विहित भगवत् उपासनामें चित्तलगायाहै वोभी अधिकारी ज्ञानका है थोड़े काल में ज्ञान की प्राप्ति होजायगी ऊर्ध्वगतिके ३ तीन कारण हैं पूर्व जन्म

के संस्कार का उज्ज्वल होना १ बर्तमान कालका पुरु-
षार्थ २ ईश्वर अनुग्रह ३ शुद्ध अन्तःकरण के ल-
क्षण तो ये कहे गये उसको श्रवण मनन निदध्यासन
आदिक अन्तरंग साधन कर्त्तव्यहै और मलीन अन्त-
स्वाले के ये लक्षणहैं कि उसके चित्तमें अशुभ बासना
की प्रबलता होगी मनको बिश्राम न होगा विषय भोग
कामादिक के बशीभूत होगा यद्यपि गृहस्थ को छोड़
बनमें जाबैठेगा तदपि मलीन बासना उसको कल्याण
पदसे हटाय संशय बिपर्य्यय उपजाय विषय बासना
रजोगुणी व्यवहार में प्रवृत्त कर देगी और श्रवण
भी जो उस को बना तौ मनन और निदध्यासन में वृत्ति
उसकी नहीं जमैगी अन्तःकरण के दोष और मलीनता
शुद्ध सत्व पदार्थ को जमने न देंगे उसको यह करना
चाहिये कि पराये दोष न देखै शास्त्र के लिखे हुये शुभ
आचरणों से अपनी वृत्तियों के वर्त्ताव को मिलाता
रहै और अपने मनके ऊपर दृष्टि रक्खै जो दोष शास्त्र
की रीति से अपने में पावै उसको प्रयत्न कर दूर कर-
तारहै बासना यद्यपि बन्धन हेतु होती है शुभहो अथ-
वा अशुभ परंतु साधन अवस्थामें शुभका ग्रहण अशुभ
का त्याग कहाहै जैसे सतोगुणकी सहायतासे रजोगुण
तमोगुण को घटायाजाता है फिर सिद्ध अवस्था हुये
पीछे शुभ बासना भी जाती रहैगी कर्मरूपी बीजके दो
अंकुर होतेहैं १ बासनारूपी २दूसरा भोगरूपी संचित
अशुभ कर्मों से अशुभ बासना होतीहै शुभकर्मसे शुभ
बासना होतीहै सो ये बासनारूपी अंकुर बर्त्तमान शरीर

में कर्म करनेसे बढ़ता घटताहै इसीवास्ते वेद और गुरू रचेगये हैं कि गुरू और वेदके उपदेश से पापकर्म कर-के उपजी जो अशुभ बासना सो दूर होजाती है परन्तु दूसरा अंकुर भोगरूपी बिनाभोगे नहींमिटता तो कारण मलीन अंतःकरण वालोंको वेदविहित शुभकर्म निष्काम नित्य नैमित्यादिक बिना आलस्यके बिधि सहित नित्य प्रति पुरुषार्थ करकै करना चाहिये भगवत्‌नाम स्मरण और उपासना में तत्पर होय हरि गुरु साधु सेवीहोना चाहिये जिसके करनेसे पुण्य का बल बढ़कर पापकर्म का बल घटजाय ऐसा करते करते किसी जन्ममें ज्ञान द्वारा करकै परमपदका भागी होजायगा ॥ प्रश्न तीसरा कहते हैं हे भगवन् यह कर्म क्याहै और जबकि कर्म सदा बन्धन का हेतु हुआ तौ फिर वेदने किस निमित्त कर्म्म का प्रतिपादन किया और कर्म कौन करता है कौन भोगता है कौन फल देता है और आपने प्रथम ऐसा उपदेश कियाहै कि अद्वय सच्चिदानन्द एकआत्मा परिपूर्ण अक्रिया अभोक्ताहै और सब मिथ्याहै भ्रम कर-कै जगत् प्रतीत होता है फिर कर्तृत्व भोक्तृत्व किसको रही जो दूसरेको है तो द्वैत सिद्ध होती है और उसी आत्मा को है तो अकर्त्ता अभोक्तापना कहां रहा इस संदेहको कृपा करकै दूर कीजिये ॥ उत्तर इस का गुरू कहते हैं ॥ हे शिष्य कर्म्म के अर्थ करनेके हैं और वृ-त्तियों का स्वभाव नदी के जलकी नाईंहै कि नित्य चला ही करती हैं वेद ने निषेध कर्म्मसे डराकर और स्वर्गा-दिकका लालच दिखाकर सुकर्मकी ओर वृत्तियोंकाप्रवाह

कराया इसलिये कि सुकर्म के प्रवाहमें मनबुद्धि निर्मल होकर अपने निज स्वरूपको जो भूलगया है पहिचानै और आत्मा में वृत्ति जाठहरै जैसे अनेकनदियां चलती चलती समुद्र मेंजाकर लयहोजाती हैं कर्मकाण्ड का तात्पर्य्य यही है कि जो ऊर्मी चित्तके विषय उठती हैं उसकी विशेषता से उन्मत्तता होजाती है जैसे बालक को जो मातापिता उनका लिखना पढ़ना व्यवहारादिक न सिखलावें तो बालक पशु गति में रहे और इतना शोचना चाहिये कि जैसे बालक को प्रथम ओनामासी आदिक सिखलाई जाती हैं तौ उसका तात्पर्य यही है कि अक्षर ज्ञान में सामर्थ्य करकै विद्यामें तत्पर हो ऐसा ही वेद में कर्मादिक के वास्ते कहा है जिसको करते करते विमलता मन बुद्धिकी होय मोक्षपदका अधिकारी होजाय यह नहीं है कि जन्मभर वोही आदिके कर्मकिया करै जैसे आदिमें इस देहधारी को संस्कार दीक्षा होकर उपासना सगुण स्वरूप की और सकाम कर्म की रुचि कराई जाती है फिर करते करते जब इसको विचारहुआ और सब पदार्थों को अनित्य और आगमापायी समझा तौ निष्कामता करके अन्तः कारण की शुद्धि की प्राप्ति होजायगी और जिस करके ज्ञान प्राप्तहोय सब कर्म आपही छूट जायँगे गीताजी में श्री कृष्ण महाराज ने अर्जुन प्रति बारम्बार कर्म उपासना का उपदेश कर ऐसा वर्णन किया है कि अनेक जन्मों के साधन करते करते सिद्धि प्राप्तहोती है ॥ अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परांगतिम् ॥ और यह कर्मही देहादिक प्रपंच की

उत्पत्ति का बीज है जब शुद्ध चैतन्य निर्विकार में॥ एकोहं भविष्यामि॥ करके इच्छा उत्पन्न भई तौ वोही प्रथम बीज कर्म का भया जिससे एक प्रपञ्च नाना मूर्ति करके खड़ाहोगया और नानात्व करके इतना फैला कि अपने निज स्वरूप को भूलगया फिर जिस जिस देहधारी के जैसे जैसे कर्म होते भये तैसे तैसे फल लगते गये सो जो भूल और भ्रांति आत्मा के स्वरूप में होती भई तिसके ही मिटाने के वास्ते वेद रचे गये और कर्म उपासना ज्ञान तीन सीढ़ी रक्खी गईं निषेध और सकाम कर्म तो बन्धनकेही हेतु हैं जिसके करनेसे वेदने त्याग लिखाहै परंतु निष्कामकर्म अन्तःकरण शुद्धिद्वारा मोक्षका अधिकारी बनाताहै और यहजो तुमने पूछा कि कर्म कौनकरताहै कौन भोगताहैकौनफल देताहै सोसुनो यह जीवजो चैतन्य कूटस्थका आभास बुद्धि में अविद्या सहितहै सोई कर्मकरनेवाला और कर्मोंका फल भोगनेवाला सूक्ष्म शरीर सहित है और शुद्ध सत्त्व मय विद्या में जो चैतन्य का आभास जिसको ईश्वर सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान कहते हैं सो कर्मोंका फलदेने वालाहै परमात्मा शुद्ध निर्विकार अद्वितीय चैतन्य परिपूर्ण इनदोनों ईश्वर और जीवका साक्षी अकर्त्ता अभोक्ता एकही है उसमें द्वैत का विकारनहीं आसक्ता है क्योंकि उसी की इच्छा करके ये दोनों कल्पित भये हैं यद्यपि इन दोनों में और सब जगत् और जगत् के पदार्थोंमें सत्ता उसी चैतन्य की है तदपि सब से परे और सब से न्यारा अकर्त्ता अभोक्ता वोही एक चैतन्य है और गीता जी में

इस कर्म के पांच कारण वर्णन हुयेहैं ॥ अहंवृत्ति १ कर्मेन्द्री सहित यह स्थूल देह २ मन बुद्धि ज्ञानेन्द्री सहित ३ प्राण वायु की चेष्टा ४ चैतन्य साक्षी रूप की सत्ता ५ सुखाकार दुःखाकार वृत्ति होने से बुद्धि में जो आभासित चैतन्य है कर्तृत्व भोक्तृत्व उसी को है यद्यपि सत्ता और अधिष्ठानता परमात्मा की है तदपि चैतन्य दीपक की नाईं केवल सत्ता और प्रकाश देने वाला जानो साधक किसी का नहीं दीपक के प्रकाश में कोई शुभ कर्म करो अथवा अशुभ कर्म करो चाहो कुछ मतकरो वो साधक बाधक नहीं है न दीपकको कुछ कर्म लगै ऐसे ही कर्तृत्व भोक्तृत्व चैतन्याभास को है शुद्ध चैतन्य अद्वितीय में द्वैतका विकार नहीं आसक्ता है और यह कर्तृत्व भोक्तृत्व स्वप्न की समान है देखो कोई सामग्री स्वप्न में नहीं होती है केवल चैतन्य की सत्ता करके यह मन प्रपंच रचलेता है और सब रूप आपही होजाता है आपही करताहै आपही भोगता है आपही देखता और जब तक जाग्रत नहीं होती उस को सत्य भी मानता है जाग्रत समय सारा प्रपंच स्वप्न का असत और नाशवान् होजाता है तैसेही जबतक अविद्या करके मोह निद्रा में है कर्तृत्व भोक्तृत्व को सत्य मान रक्खा है ज्ञान अवस्था में सब का नाश है केवल आपही आप रहजाता है यद्यपि कर्म साक्षात् मोक्ष का हेतु तो नहीं है अहंभाव करके और फलकी इच्छा करके जन्म मरण काही हेतु है और अध्यात्म विद्या और कर्म में परस्पर बिरोध भी है परंतु मल विक्षेपा-

दिक रोग बिना कर्म निष्काम और विचार के दूर नहीं हो सक्ते जब तक पात्र शुद्ध और जगत् के पदार्थों से खाली नहीं होता तो उत्तम पदार्थ अध्यात्म अविद्या का उस पात्र में क्योंकर आवै और क्योंकर ठहरे तिस कारण यह कर्म ज्ञानके अधिकार का सहायक है इस-लिये इसका करना अवश्य है जब तक त्रिकुटी ज्ञान और देहका अध्यास बना हुआ है तब तक बेद अनु-सार साधनों में पुरुषार्थ करता रहै देखो श्री कृष्ण म-हाराज का उपदेश अर्जुन प्रति जो नर अवतार थे कर्मों के वास्ते बारम्बार हुआ है कर्म उपासना के लिये न करने कर्म को नहीं कहा है फलकी इच्छा के त्याग में कहा है (प्रश्न हैं) हे स्वामी कर्म का तात्पर्य्य तो मैंने जाना उपासना ज्ञान और भक्ति का और निरूपण करिये (उत्तर) हे शिष्य उपासना और भक्ति पर्याय शब्द हैं इन दोनों के अर्थ एकही हैं अत्यन्त भक्ति का होना प्रेम है सगुण स्वरूप ईश्वर में जिस रूपका गुरू ने उपदेश किया है प्रीतिसे भजन पूजन अर्चन सेवा ध्यान राजसी तामसी करना और सब ओर से मनको खैंचकर उपासक देवमें सदैव मन लगाये रहना यही उपासना है यही भक्ति है प्रथम नवधा भक्ति साधनी चाहिये जिसको हम पहिले कहि आये हैं उसके करते करते पराभक्ति और प्रेम उत्पन्न होता है सो परमपद पर पहुंचादेता है बिना उपासना के मन की एकाग्रता और बुद्धिका शुद्ध होना नहीं बनता क्योंकि प्रपंच के कार्य्यों में जो मन सौजगह बट रहा है उपासना करने

से सिमटकर एक जगह लग जायगा जिससे विक्षेपता दूर होजायगी दूसरे ईश्वर उपास्य देव शुद्ध तत्त्व सर्वज्ञ है उसका चिंतवन नित्य प्रति अन्तःकरण को शुद्ध कर्ता चला जायगा श्रद्धा और प्रीति से विधि सहित उपासना को बढ़ावै और मन इन्द्रियादिक का निरोध करता रहै और शुभ कर्म निष्काम दृढ़नेम से करता रहै और अपने उपास्य देव में सब कालमें मनकी लगावट को बढ़ावता रहै जिससे तदाकार वृत्ति होजाय जैसे उस ग्वालिये की वृत्ति भैंस में जमी (दृष्टान्त) एक ग्वालिया बनमें भैंसवाला किसी महात्मा के पास आनिकला और महात्मा से प्रार्थना करता भया कि हे महाराज मुझको भी कोई मंत्र साधन ऐसा बतलाइये जिस करके मेरा उद्धार होय महात्मा ने किसी देवता का मंत्र बतला दिया कि इसमंत्र को जपा करो दो तीन रोज पीछे महात्मा ने उससे पूछा कि तुम उस मंत्र को चित्त लगाकर जपते हो या नहीं उसने कहा कि जपतो करता हूं परंतु मन मेरा भैंसमें जो मेरे घर है रहता है जपमें मन नहीं लगता जब महात्मा ने उसकी वृत्ति के अनुसार भैंस काही ध्यान उसको बतलाया कि ईश्वर उपास्य देव तुम्हारा भैंस के ही रूप में है उसी के रूप में ध्यान और मन लगावो उस ने जङ्गल में एक मठमें बैठ कर खूब ध्यान लगाकर जप किया यहां तक कि अन्न और जल को भी भूल गया महात्माने एक दिन जाकर वहां देखा और उस का नाम लेकर पुकारा उसने जवाब दिया कि द्वारखिड़-

की का छोटाहै मेरे सींग इसमें नहीं निकलेंगे जब गु-
रूने जाना कि वृत्ति इसकी तदाकार उपास्यदेव के हो-
गई तब भीतर जाकर चैतन्य परिपूर्ण के ध्यान पर उस
की वृत्ति को जमादिया हे शिष्य मन बुद्धि का जमाव
उपास्य देवमें ऐसाही होना चाहिये जब फलदायक
होती है इसी का नाम भक्ति है इसी का परिणाम परा
और प्रेम फल रूपा है जिसके विवश परमेश्वरहैं और
ज्ञान अर्थ जानने के हैं जो अपने स्वरूप को अज्ञान
करके भूल गया है और मन बुद्धि देहादिक को अपना
स्वरूप समझ रक्खाहै तिससे न्याराहोकर अपनेस्वरूप
को मनन निदिध्यासन करके यथार्थ जानलेना यही ज्ञा-
न है और उसमें प्रवृत्तियों का प्रवाह रख तदाकार
होजाना विज्ञान है ज्ञानके दो अंग हैं एक घट पटादिक
का ज्ञान मिथ्या और कल्पित बंधन का हेतु है दूसरा
अपने निज स्वरूप का ज्ञान सो सत्य है और मोक्ष का
हेतु है यद्यपि अपने आत्माही करके जो ज्ञान स्वरूप
है उससे सब पदार्थ जाने जाते हैं परन्तु भ्रम करके
देहधारी को घट पटादिक के ज्ञान में अन्यथा भान है
अर्थात् रस्सी को सांप जानना इसीको अज्ञान कहते हैं
और जब रस्सी को रस्सी जाना और सांप का भ्रमदूर
भयासो अदृष्टान आत्मा का ज्ञान कहलाता है फिर
उसके दो अंग हैं परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्म है यह परोक्ष है
ब्रह्म मैं हूं यह अपरोक्ष है (प्रश्न है) हे स्वामी आप
ने पहले ऐसा वर्णन कियाहै कि अद्वयज्ञान शुद्ध चैतन्य
परिपूर्ण एकहै जिसकी बुद्धि में आभास होनेसे जीव सं-

ज्ञा हुई सो यह बात मेरी समझ में नहीं आई मुझको तो जीव परिच्छिन्न और नाना शरीर प्रति अनेक प्रतीत होते हैं किसलिये जो एक जीव होय तो एक जीवका सुख दुःख ज्ञान अज्ञान सबको एक काल में एकसा होना चाहिये सो ऐसा नहीं है कोई सुखी है कोई दुःखी है कोई ज्ञानी है कोई अज्ञानी है और जब कि जीव जो चैतन्य सहित आभास बुद्धि में आपने स्वरूप जीव का वर्णन किया है सब शरीरों में नाना और परिछिन्न ठहरे तो चैतन्य साक्षी भी न्यारे न्यारे बहुत मानने होंगे और ईश्वर भी नाना मानने परेंगे एक अद्वय चैतन्य नहीं बनता और सद्गुरु के लक्षणों में आपने पहले ऐसा कहा है कि जीव ब्रह्म की एकत्वता निश्चय करके जानै और बिना अभेदता जीव ब्रह्मके मोक्ष पदकी प्राप्ति नहीं ब्रह्म को आप एक सच्चिदानन्द रूप अक्रिय कहतेहो जब कि जीव नानापरिछिन्न क्लेश सहित कर्त्ता भोक्ता ठहरे तिसकी ब्रह्म से एकत्वता क्योंकर होगी कृपा करके इस संदेह को दूर कीजिये (उत्तर) हे शिष्य चैतन्य अद्वय ज्ञानस्वरूप परिपूर्ण एकही है परिछिन्न और नाना नहीं है परंतु अन्तःकरण नाना शरीर प्रतिहैं ता करके सुख दुःख ज्ञान अज्ञान शरीर प्रति न्यारा न्यारा है और उन अनेक अन्तःकरणों में आभास उसी एक चैतन्य का है विशेष भाग चैतन्य जो अन्तःकरण की वृत्तियों को प्रकाशे है साक्षी कहिये है ता विशेष भाग चैतन्य साक्षी की एकत्वता ब्रह्म अद्वय ज्ञान स्वरूप से बनतीहै और सामान्य भाग चैतन्य अन्तःकरण वशिष्ठ

बुद्धि आभासित और बुद्धि आभास सहित संसारी जीव कहिये सो चैतन्य मात्र तो एकही है नाना नहीं परंतु उपाधि भेद करके नानापन प्रतीत होता है सो उपाधि अन्तःकरण की है स्थूल शरीर प्रति सूक्ष्म शरीर भी नाना और परिछिन्नहै श्रीकृष्ण भगवान् ने गीताजी के दूसरे अध्याय के १३ और १४ श्लोकमें अर्जुन के प्रश्न पर उपदेश किया है जो एक वस्तु समस्त जगह व्यापकहै वो उपाधि भेदकरके नाना नहींहोसक्ती जैसे घटाकाश और मठाकाश घट मठकी उपाधिसे आकाश न्यारे न्यारे दीखते भी हैं परंतु दोनों में महा आकाश एकही है उपाधि के नाश होनेसे महा आकाश से न्यारा घटाकाश मठाकाश कभी प्रतीत न होगा जैसे एक चंद्रमा अनेक जलके पात्रों में नाना भांति दीखताहै प्रतिबिम्ब करके बास्तव में चंद्रमा एकही है और जो प्रतिबिम्ब को ही नाना समझकर जीवात्मा भी नाना मानेजावैं तौ भी नहीं बनसकता क्योंकि जीवका स्वरूप चैतन्य कूटस्थ और उसका आभास बुद्धि में अविद्या सहित जोहै सो उसमें चैतन्य कूटस्थ तौ सबमें एकही है मन बुद्धि आदिक जड़ रूपनाना और परिछिन्न है जैसे सूर्य्य संपूर्ण जगत् का प्रकाशक है जहां उपाधि मकान और वृक्षादिक कीहै सो नाना वृक्ष और मकान होने से प्रतिबिम्ब और प्रकाश नाना भांति होने लगते हैं ऐसेही नानात्व अन्तःकरण की ही बनती है और सुख दुःख ज्ञान अज्ञान रागद्वेषादिक जो धर्म बुद्धिकेहैं सो शरीर प्रति न्यारे न्यारे हैं अपना स्वरूप चैतन्य अकर्त्ता अ-

भोक्ता क्लेश रहित साक्षी रूपप्रकाशक मन बुद्धि आदिक का एकही है सो नानारूप होकर भानहोता है जैसे सुवर्ण के गहने और सुवर्ण गहने यद्यपि न्यारे न्यारे दीखतेहैं नाम रूपकरके सो कल्पितहै सुवर्ण केवल सब में एकही है ऐसेही मृत्तिकाके पात्रोंको समझलेना चाहिये ऐसेही चैतन्य और प्रपंच को समझो (प्रश्न) हे महाराज जो मृत्तिका और सुवर्ण के दृष्टान्त जो आपने वर्णन किये हैं सो मृत्तिका सब पात्रों में एकही भांति दीखती है तैसेही सुवर्ण सब गहनों में एक साही दीखता है और प्रपंच के पदार्थ घट पटादिक न्यारे न्यारे दीखते हैं (उत्तर) हे शिष्य अज्ञान करके पदार्थों में भेद भान हो रहा है वास्तव में घट पट दोनों कार्य्य पृथ्वी के हैं उसी मृत्तिका में से जिससे घट बनता है बन का वृक्ष उत्पन्न होता है वृक्षसे कपास होती है तिससे सूत बनता है सूत से पट बुना जाता है फिर पटके कई भेद होते हैं गज़ी गाढ़ा मलमल छींट आदिक और उसमें जो देह के बस्त्र बनाये जाते हैं उनके भी नाना प्रकार के नाम होते हैं जैसे एक तंतु सूतसे नाम और रूप का इतना फैलाव भया ऐसेही सब पदार्थ संसार के पंच महाभूतके केही कार्य्य हैं और पंच भूत माया के कार्य्य हैं माया इच्छाशक्ति उसी अद्वय ब्रह्म की है ये सब प्रपंच नाना भांति दीखता हुआ उसी एक चैतन्य ब्रह्म के तंतु के ताने बाने में बुना हुआ है बास्तव में एकही चैतन्य परिपूर्ण है जो अपनी अचिंत शक्ति करके नाना रूप भान होरहाहै देखो बीज का क्या रूप होताहै और

जब पृथ्वी में बोया जाताहै वोही बीज अंकुर रूप हो जाता है फिर उसी में गुद्दे डाली पत्ते फूल फल नाना भांति के दीखते हैं और वोही बीज फलमें ज्यों का त्यों रहता है बीज में वृक्ष वृक्ष में बीज प्रत्यक्ष है ऐसेही आदि अन्त में जब एक रूप ही आत्मा ठहरा तो मध्य में भी वोही है दूसरा नहीं समुद्र में अनेक तरंगें न्यारी न्यारी दीखती हैं वास्तव में वोही एकजल है दूसरा पदार्थ नहीं ऐसेही परमात्मा सच्चिदानन्द परिपूर्ण एकही है नाम रूप करके नाना रूप भास रहा है अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप सब पदार्थों में हैं सो अस्ति भाति प्रिय तीन गुण जो आत्मा के हैं सदा बने रहते हैं नाम और रूप ये दो गुण माया के मिथ्या और कल्पित नाशवान् हैं जैसे काठ का खिलौना हाथी है उसको जब तोड़ा लकरी रहजाती है नाम रूप हाथी का जाता रहता है इसी नाम रूप को जगत् जानो जैसे जेवरी सत् है सर्प जो भ्रम करके भान होताहै असत् है सर्प दूसरा वस्तु नहीं है अँधेरे के विकार से है अंधेरे के विकार से वोही जेवरी भुजंग दीखती है किसी के बतलाने अथवा दीपक के प्रकाश से जब जेवरी का ज्ञान हुवा उसी क्षण सर्प का नाश होगया तैसेही सद्गुरुके उपदेश और शुद्ध वृत्ति अपनी करके जिस काल ज्ञान का प्रकाश होता है उसी क्षण तिमिर अज्ञान का दूर होकर आत्मा चिदानन्द घन एक भासताहै जगत् का नाश होजाताहै ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जो आपने बर्णन किया सो सत्यहै परंतु एक संशय यह दूर कीजिये

कि जो आप एकही आत्मा परिपूर्ण को वर्णन करते हो और जगत् को असत् कहते हो तौ ब्रह्म अदृश्य निराकार निरावयव है और यह जगत् सबको प्रत्यक्ष साकार और सावयव प्रतीत होरहाहै असत् वस्तु प्रतीत नहींहोती तौ जगत् को क्योंकर असत् समझा जाय और ब्रह्म निराकार निरावयव जगत् रूप क्यों कर होसक्ताहै क्योंकर जगत् साकार और सावयव है उत्तर॥ हे शिष्य अज्ञान दिशा में आकार और अवयव भ्रांतिकरके प्रतीत होता है वास्तवमें आकार और अवयव कुछ नहीं है अभी हमने तुमसे दृष्टान्त रज्जु और सर्प का कहाहै रज्जु में आकार और अवयव सर्प का कुछ नहीं है और तीनों काल में सर्प का अभाव है परंतु बिना प्रकाश के समय सर्प प्रतीत साकार होताहै तैसेही प्रतीति भ्रांति करके जगत्की है अधिष्ठान ब्रह्म के जान करके जगत् की भ्रांति मिटजाती है जब कि आदि में और अन्तमें अदृष्ट और निराकारहै तिसही को मध्य में जानो अनात्म दृष्टिवालों को जिनको अधिष्ठान का ज्ञान नहीं है तिनकी दृष्टिमें दृश्य वर्ग सत्य है जिनकी दृष्टि अधिष्ठान पर है उनके आगे सब असत्य है जिनकी आंखों में विकार नहीं है और प्रकाश काल है उनको सर्प प्रतीत न होगा और देह भवनादिकों को जो आकार जगत् का देखते हैं सो पंच महाभूत के कार्य्य हैं सो पांचो महाभूत भी आकार और अवयव नहीं रखते आकाश शब्दमात्र है वायु स्पंद मात्र है जल द्रवतामात्र है अग्नि दाहकतामात्र है पृथ्वी

गन्धमात्र है जबकि कारणकेही आकार और अवयव नहीं हैं तौ कार्य्यकेभी आकार और अवयव असत्य हैं पृथ्वी में जलके संयोग करके उद्भवतारूप वोही चैतन्य है जिसका नाम अन्नभया ताके रससे वीर्य्य रुधिरहोय स्थूल देह बना है जिसके अवयव हाथ पांव मुख आदिक न्यारे कल्पितभये इन अवयवों को न्याराकरो तो देह नहीं रहता है फिर उन अवयवों को बिचारो तो अस्थि रुधिरमात्र है अस्थि रुधिर को न्यारा करो तो अवयव नहीं रहता और बास्तव में अस्थि रुधिर भी नहीं अन्नका रस वीर्य्यरूप आपही आत्मा है जाग्रत में तौ तुमको यह पंच महाभूत का कार्य्य दृश्य वर्ग सावयव भान होता है परन्तु निद्रा समय जाग्रत का प्रपंच भान नहीं होता दूसरी भांति का प्रपंच नाना भांति करके स्वप्न अवस्था में दीखता है वहां सामग्री पंचमहाभूत और पंचीकरण कुछ भी नहीं है सूतकी नाईं जो नाड़ी गले में है उसी में नदी पर्वतादिक भान होते हैं और स्वप्न देखनेवाला स्वप्न के प्रपंचको सत्य मानकर व्यवहार करता है क्योंकर स्वप्न स्त्री संगति से पुरुषों का वीर्य्य अस्खलित होजाता है जाग्रत होते ही प्रपंच नाश होने से स्वप्न के प्रपंच को असत्य जानता है इसलिये विचार करना चाहिये कि वोही चैतन्य निरावयव अपनी कल्पना करके नाना रूप होकर सावयव प्रपंच रचलेता है फिर आपही उसका द्रष्टा होताहै इसी भांति जाग्रत में भी जबताईं मोह अज्ञान की निद्रा है वोही चैतन्य निराकार निरावयव नाना रूप

होकर सावयवसा दीखता है स्वप्न का नाश जाग्रत में है जाग्रत का नाश स्वप्न में है इन दोनों का नाश सुषुप्ति में है सुषुप्ति का नाश इन दोनों में है तिस करके इन तीनों अवस्था की असत्वता प्रत्यक्ष है सत्व तौ वोही अपना आत्मा अद्वितीय परिपूर्ण है जो तीनों अवस्था में एक रस बना रहता है और सबको देखता जानता रहता है बुद्धि चैतन्य की सत्ता से जो कल्पना और रचना हृदय में करती रहती है उसी का किया भया यह दृश्य वर्ग है यह सृष्टि दृष्टिमात्रही है जब आँख बन्द की जावेगी तब कुछ न दीखेगा कान बन्द किये से सुना भी नहीं जायगा जब कि यह सब दृश्य वर्ग कल्पित किया भया अपना ही ठहरा तब केवल आपही आप है और जैसे आदि अन्त में निरावयव निराकार है तैसाही मध्य में जानो यह संसार प्रतीति मात्र उसी आत्मा निराकार का है अवयव और आकार कल्पित और असत्य है देखो जलको कोई आकार और अवयव नहीं है वोही जल ओला बनकर साकार प्रतीत होताहै अन्त में फिर जल होजाताहै ऐसेही अन्न का रस वीर्य्य जिस में कोई अवयव नहीं है जब स्त्री की योनि में जाता है अंकुर अवयव होजाते हैं और भवनादिक जो दीखते हैं पंचीकरण कृत महाभूतों के कार्य कल्पित हैं जल से पृथ्वी उत्पन्न होय अणु मात्र के समूह में ईंट पत्थर चूना आदिक बनकर उसके समूह से भवन प्रतीत होते भये भवनों के समूहों का नाम मोहल्ला भया मोहल्लोंका समूह नगर प्रतीत भया

जैसे वृक्ष और बन ऐसेही बर्ण अर्थात् अक्षर कि बायु के आघात करके आकाश से शब्द भया तिससे अक्षर कल्पना किये गये अक्षरों के समूह के पद और श्लोक बने ऐसेही ये दृश्य वर्ग के अवयव और आकारों को कल्पित और असत्य जानो (प्रश्न) हे भगवन् जब कि यह सारा प्रपंच वास्तव में असत्य और मिथ्या ठहरा और बिना एक चैतन्य ज्ञानानन्द स्वरूप के दूसरा पदार्थ न ठहरा तो सुखदुःख ज्ञान अज्ञान बन्ध मोक्ष किसको होता है और अपना आत्मा जो सदा प्राप्त है ताकी प्राप्ति के लिये और अज्ञान और बन्ध के दुःख के हेतु कर्म उपासना ज्ञान के साधन वेद ने किसके लिये उपदेश किये हैं प्राप्ति बस्तु की प्राप्ति की इच्छा और नित्य निवृत्ति का उपाय बनता नहीं है इस संदेह को दूर कीजिये (उत्तर) हे शिष्य चैतन्य परिपूर्ण सर्वदानन्द नित्य मुक्त ही है बन्ध और दुःख का उस में लेश नहीं है उसकी शक्ति अचिंत्य और अनिर्वाच्य है ईक्षण शक्ति करके अपोहन शक्ति भी उसी की है जब अपनी कल्पना करके माया पहित ईश्वर कहलाया तो यहां तक ज्ञान शक्ति की लीला करता भया औ मलिन माया आभाषी अविद्योपहित जीव कहलाया वहां अपोहन शक्ति में लीला करता भया अपने निज स्वरूप को भूल कर मन इन्द्री आदिक के धर्म आरोपित कर सुख दुःख ज्ञान अज्ञान बन्ध मोक्ष का भागी वो चिदाभास है तिसके लिये वेद का उपदेश और साधन वर्णन हुये हैं क्योंकि भ्रांति करके जो देहधारी को मिथ्या अध्यास कर्तृत्व भोक्तृत्व का अ-

भिमान जो बन्धनरूपहै उसीके मिटाने के वास्ते वेदा-
न्त और सद्गुरु के उपदेश साधनरूपी वर्णन हुये हैं
अपना आत्मा चैतन्य अकृय अभोक्ता सर्वानन्दसाक्षी-
बना हुआ है जब तक कि पूर्ण ज्ञान होकर सप्तभाव-
षष्ठ और सप्तम अवस्था पर पहुँचकर अपने निज
स्वरूप में स्थित नहीं होता तब तक गुरु वाक्य वेद
अनुसार साधन ही अवश्य है ज्ञान हुये पीछे जो दूसरा
पदार्थ नहीं रहता तो फिर इसको कुछ कर्त्तव्य नहीं है
न बन्ध है न दुःख है और प्राप्ति अवस्था में भी प्राप्ति
बनती है जैसे किसीका गलेका गहना है तो गले हीमें
है परन्तु न देखने से ऐसा भ्रम होजाता है कि मेरे गले
का गहना कहीं जातारहा जब दूसरा बतला देता है तो
कहता है कि मिलगया भ्रान्तिजन्य दुःख मिटजाता है
ऐसेही भूलने से जो भई भ्रांतिउसका मिटजाना ही ब्र-
ह्म की प्राप्ति जानो यद्यपि प्रपंच असत् होने करके नि-
वृत्त रूपही है परन्तु भ्रांति करके जो प्रतीत होरहाहै ता
निवृत्तिकी भी निवृत्ति बनती है जैसेरस्सी में भुजंग तीन
काल में नहीं है परंतु तिमिररूपीभ्रांति से भुजंगदीखता
है सो बतलाने दूसरेके अथवा दीपकके प्रकाशसे भुजंग
की निवृत्तिहोजातीहै ऐसेही जगत्कीनिवृत्ति अधिष्ठान
ब्रह्मकाज्ञानहै(प्रश्न)हेस्वामी सबदेहधारियों ने सुख का
प्राप्तिहोना विषयसे मानरक्खा है और दुःखकी निवृत्ति
का बर्त्ताव और उपाय इसभांति करते हैं कि जो रोग
जन्य दुःखहुआ तो उसका उपाय औषध से करलेते हैं
दरिद्रता के दुःखका उपाय उद्यम करने और धनके सं-

ग्रह करने से करते हैं क्षुधा और पिपासा के दुःख का उपाय अन्न और जलसे शीत और उष्ण के दुःख का यत्न वस्त्रसे करते हैं ब्रह्मकी प्राप्ति के सुखका तो कोई इच्छा नहीं करताहै न उसमें मन लगाता है क्योंकिजो बस्तु अदृष्टहै उसका अनुभव और उसके प्राप्ति की इच्छा इस मन स्वादी से क्योंकर बनै तिस कारण मुमुक्षुता क्योंकर बनै (उत्तर) हे शिष्य आदि भूत और आदि देव अध्यात्म तीन भांति के दुःख जगत्में हैं तिस की निवृत्तिका उपाय नेमकरके औषध आदिक से नहीं बनसक्ताहै कदापि कोईरोग औषध से दूरभी भया तोदूसरारोग उत्पन्न होगया अत्यन्त करके निवृत्ति नहींहोती और अन्तर्य्यंचिन्ता और विक्षेपता का बड़ा दुःखहैं सो औषध के बशका नहीं संसार में सर्वसुखी कोई भी नहीं है किसी को धनकी किसी को सन्तान की किसी को रोग की किसीको बैरीकी किसीको दुष्टताई अपने कुटुम्बकी और सबको जरामरणकी चिन्ता भय बनी रहती है जब ताईं देहधारी ने मिथ्या प्रपंचको सत्यमानकर अहंमता और ममतामें वृत्ति लगारक्खी है तबताईं दुःखही दुःख है और जो किंचिंमात्र सुख जो प्राणी ने विषयकी प्राप्ति में मानरक्खाहै सो सुख भी अपनेही आत्माकाहै विषय में सुख नहीं है किसलिये जब किसीको विषयके पदार्थ की इच्छाहोती है चित्त में विक्षेपता उत्पन्न होती है जब वो पदार्थ प्राप्तहुआ तो क्षणमात्र को अपने आत्माका प्रतिबिम्ब बुद्धिमें ठहरा विक्षेपता दूरहुई यही सुख का स्वरूपहै फिरदूसरे पदार्थमें जो वृत्ति बहिर्मुखहुई वो सुख

नहीं रहता है जैसे किसी का पुत्र बहुत दिनों में आन कर मिला जैसा सुख प्रथम मिलने से होता है फिर यद्यपि वोही पुत्र सदा समीप भी रहै नहीं होता इसी तरह स्त्री मैथुन स्पर्शादिक को भी जानो तैसेही इच्छा जो भोजन के पदार्थों में होती है प्राप्ति के समय जो आनन्द का प्रतिबिंब ठहरकर सुख होता है पेटभरे पीछे कैसाही उत्तम पदार्थ भोजन का रक्खारहो इच्छा नहीं होती और सुखभी नहीं होता तिस कारण विषयसुख का कारण नहीं अपनाहीं आत्मा सुख की प्राप्तिका कारण है देखो और विचारो सुषुप्ति अवस्था में कोई विषय नहीं होता है और सब प्राणियों को उस अवस्था में पूर्णसुखकी प्राप्ति रहती है तैसेही जबताईं प्राण आरूढ़ चैतन्य प्रकाशक देहका है तभी ताईं सुखकी प्राप्ति है प्राण रहित शरीर को कैसेही उत्तम पदार्थ रक्खे रहो कुछ सुख नहीं होता और जो तुम कहते हो कि ब्रह्म अदृष्ट है तो उसके सुखका अनुभव कैसे हो सकै है सो जीव आतमा जो सब प्राणी मात्रों को अत्यन्त प्रिय है सो उसी सच्चिदानन्द का आभास है सो सदा उसी करके सबके हृदय में सुख का अनुभव होता है सो अपना स्वरूप आत्मा सच्चिदानन्द घन सुख स्वरूप है आन पदार्थ में कुछ सुख नहीं है (प्रश्न) हे भगवन् सत्य है सुख का कारण अपनाहीं आत्मा है यह तो मैं समझा परन्तु एक संदेह यहहै कि जब आत्मा सदा सुख स्वरूपहै और दुःख की इच्छा कोई प्राणी नहीं करता है तो फिर यह दुःख कहां से आजाता है और ऐसे

आत्मा सुख रूप में दुःख का प्रवेश होना विषमता और असंभवता का करता है (उत्तर) हे शिष्य अपने आत्मा सच्चिदानन्द रूप में तौ कदापि दुःख का लेश नहीं है अज्ञान दिशा में ममता करके यह मन प्रतिकूल ज्ञान करके दुःख मानता है अनुकूल में सुख मानता है अनुकूल ज्ञान में वृत्ति स्थिर रहती है सुख प्रतीत होता है प्रति कूल ज्ञान में विक्षेपता होती है सुख नहीं रहता है दुःख माना जाता है इसी विक्षेपता के दूर करने को कर्म उपासनाका वेदने उपदेशकियाहै देखो रज्जुमें सर्प नहीं भी है तौभी सर्प मान कर दुःख और भयको प्राप्तहोताहै सो रज्जुके ज्ञानसे नाश होजाताहै और जोकर्मसंचित हैं वो भोगे बिना मिटतेनहीं ज्ञानीहो अथवा अज्ञानी हो ज्ञानी जो अपनेको देहनहींमानतादेहकासम्बन्धसमझ कर स्थिररहताहै विकल नहींहोता अज्ञानी जिसनेआपे को शरीर मान रक्खाहै दुःखीहोय विकल होजाताहै सो दुःख का कारण अज्ञान है इस अज्ञान के ही दूर करने में निवृत्ति दुःख की होती है (प्रश्न) हे महाराज आत्मा तौ नित्यज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् सर्वत्रव्यापकहै फिरउस में यह तमरूपीअज्ञान क्योंकरभया क्योंकि जहांप्रकाश होता है वहां तम नहीं रहता और अज्ञान के कारण को जो अविद्या कहतेहो उसका क्या स्वरूपहै (उत्तर) हे शिष्य षट् ऊर्मी शोक १ मोह २ क्षुधा ३ पिपासा ४ जरा ५ मृत्यु ६ पंच तन्मात्रा ज्ञान इन्द्री द्वारा अहंवृत्ति लियेहुये भान होती हैं इसीका नाम अविद्याहै यही अविद्याका स्वरूपहै आत्मा इनसे न्याराहै और यह सब

धर्मऔरक्रिया अन्तःकरण और प्राणकेहैं अज्ञानऔर मिथ्या अहंकार करके शरीरधारी अपने में मान दुःखी और विकल होताहै यही बंधनका हेतुहै और पांचो तन्मात्रा बुद्धि आदिक शुद्ध सत्तागतिकरके सन्तोषपूर्वक परमात्मा में लगावै शुद्ध कहलाता है जबतांई इन षट् ऊर्मियों का विकार बनाहुआ है तबतांई अविद्या और अज्ञान दिशाहै सोई दुःखरूप है सहनता और संतोष वृत्ति करके विकारकी निवृत्ति होती है वास्तवमें तो अपना आत्मा सदैव प्रकाशवान् ज्ञानस्वरूपही है तमका लेश उसमें नहीं परंतु अविद्याकी उपाधि अज्ञान अवस्था तम दिखलाती है जैसे सूर्य्य और चंद्रमा यद्यपि प्रकाशी स्वरूप हैं परंतु वृक्ष और गृहादिक की उपाधि करके जहां ये उपाधि है वहां तम प्रतीत होताहै जहांये उपाधि नहीं है वहां पूराप्रकाशहै इसी भांति ईक्षणशक्ति और अपोहनशक्ति चैतन्यकी जो स्वाभाविक और अनिर्वाच्य है अन्तःकरण सबों के में लगी हुई है तिसी उपाधि के दूर करने को गुरु और वेदका उपदेश है (प्रश्न) हे स्वामी आवागमन और स्वर्ग नरक सत्य है अथवा असत्यहै और किसको है (उत्तर) हे शिष्य यद्यपि आवागमन कल्पनाही मात्रहै तदपि अज्ञान अवस्थामें बासना अनुसार सत्य प्रतीत होताहै ज्ञान अवस्थामें असत्य है जैसे स्वप्न अवस्थामें स्वप्नके पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं वोही पदार्थ जाग्रत पीछे असत्य होजाते हैं सुषुप्ति में पदार्थ जाग्रत और स्वप्न दोनों के असत्यहैं किसलिये कि इनदोनो अवस्थाओं के पदार्थों

का नाश सबको सुषुप्ति में प्रतीत होता है अज्ञान अ-
वस्था के किये भये कर्म संचित जिनसे प्रारब्ध बनता है
जबतक वो भोग नहीं लिया जाता है वासना बनी रहती
है शान्त अवस्था दृढ़ नहीं होती है तबतक अहंमता के
तले सो कृत्व देह अभ्यास आवागमन स्वर्ग नरक सुख
दुःख बना रहता है जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के उपरांत चौथी
अवस्था तुर्य्य भी है सप्तम भूमिका में प्राप्त होती है जहां
सबका अभाव है और शरीर की दो अवस्था और भी कही
गई हैं मूर्छा और मरण मूर्छा अवस्था को सब जानते
हैं जिसमें ५ पांचों ज्ञान इन्द्री और ५ पांचों कर्मेन्द्री
थकित होजाती हैं अर्थात् क्रिया से हीन होजाती हैं और
मरण अवस्था यह है कि प्राणवायु नीचे के शरीर से खीं-
चकर हृदय में जब आती है नीचे का शरीर बेकार हो-
जाता है देह अभ्यास की वृत्ति कारण शरीर में लय
होजाती है मन बुद्धि इन्द्री आदिक सहित सूक्ष्म बीज
वासना के लिंग शरीर में लय होजाता है स्थूल शरीर
अचेत होकर गिर जाता है लिंग शरीर अपंचीकृत अ-
दृष्ट को यातना शरीर और कर्म शरीर भी कहते हैं चित्त
की भावना और वासना के अनुसार आवागमन स्वर्ग
नरक भी देखता है और भोगता है फिर पूर्व शरीर की
क्रिया के अनुकूल भौतिक शरीर अर्थात् दूसरा स्थूल
देह गर्भ में धारण करता है और जो ज्ञानी है तो निर्वा-
सना होने और कर्मों के दग्ध होजाने से कहीं आता
जाता नहीं अपने आत्मा सच्चिदानन्द में लीन होजाता
है पुनर्जन्म नहीं होता इस देह में ही अनेक साधन ज्ञान

भक्ति करके और अपने पुण्योंके समूहकरकै जो लिंग शरीर जिसको पुरीयाष्टक भी कहते हैं टूट जाय तब मोक्षका भागी होता है पुरीयाष्टक की भांति ये हैं पंच कर्मेन्द्री १ पंच ज्ञानेन्द्री २ पंच प्राण ३ पंच महाभूत सूक्ष्म ४ चारोंअन्तःकरण ५ वासना ६ काम ७ ज्ञान शक्ति आदिक पांचोंशक्ति ८ और येपांचोंशक्ति चैतन्य कीयेहैं क्रिया शक्ति १ ज्ञान शक्ति २ इच्छा शक्ति ३ स्मरणशक्ति ४ अपोहनशक्ति ५ सो हेशिष्य ये चिदा भास बुद्धि अविद्या मय अन्तःकरण सहित देह अभि- मानी जिसको जीव कहतेहैं तिसको आवागमन स्वर्ग नरक कर्मोंकी वासना करके होताहै शुद्ध चैतन्य साक्षी को कुछ नहीं होता है वासना कल्पनाके मिटानेसे शुद्ध स्वरूप की स्थितिहोय आवागमन रहित होजाता है जैसे दग्ध भया बीज नहीं उपजता तैसेही ज्ञान अग्नि से वासना रूपी बीज को दग्ध करदेना चाहिये (प्रश्न) हे भगवन् यह वासना और कल्पना जो जन्मानुजन्म से जीवात्मा में लगी चली जाती है क्योंकर दूरहोय (उत्तर) हे शिष्य उसी चैतन्य की ईक्षणशक्ति करकै जिससे रचना प्रपंचकीहुई तिस्से कल्पनाऔर वासना अनेक जन्मोंसेबढ़ती चलीआतीहै साधनऔर विचार कईजन्मों करके दूरहोसकते हैं निजस्वरूप अपनाशुद्ध चैतन्य निर्विकल्पहै और मन बुद्धिसे परेहै अन्तःकरण कीवृत्ति चैतन्यआरूढ़ वासनाकहलाती है तिसीकानाम मन है सो ज्ञानइन्द्री करकै विषय विवश होय प्रपंच खड़ा करलेता है कल्पना आत्मा से भिन्न नहीं मन

उससे भिन्न नहीं विषय इन्द्रियों से भिन्न नहीं विषयसे प्रपंच भिन्न नहीं वृत्तियों का प्रवाह जगत् से फेरकर और अपने निज स्वरूप में स्थिति करने से बासनाकी हानि होतीहै सब कालमें अपनी वृत्तियोंपर दृष्टिचाहिये यही अभ्यास मन इन्द्रियों के निरोधका है ऐसे करते करते कई जन्मोंमें अध्यास अनात्माका छूटकर आत्मा का अध्यास होजाता है इसी अनात्मा के अध्यास दूर करने को कर्मोपासना अनेक साधन वेद में कहे गये हैं शुद्ध तत्त्व ईश्वर जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान तिसका चितवन और स्मरण नाम का मुख्य उपाय सुगम है तिसके करनेसे परमेश्वर अनुग्रह करतेहैं ईश्वर अनुग्रह करके और मन बुद्धि बिमलकर दुस्तर भव वारिधिसे पारलगा देतेहैं इसीलिये मुनि जनोंने भक्तिकी उत्तम महिमाकथन कीहै अहर्निशि स्मरण नामका करना चाहिये अहंमता ममत्ता रागद्वेषादिक के उद्वेग वृत्तियों के दृष्टि रखने से त्याग करता जाय भूत भविष्य वर्त्तमानका स्मरण और विचार इस विचार से किये प्रपंच कल्पनामात्र है अपने उद्यम किये से कुछ नहीं होताहै शरीर के प्रारब्ध करकै होता रहता है तिस कारण शोच बिचार और उद्यम जगत के पदार्थों में वृथा आयु खोना है परन्तु ज्ञान भक्तिके साधनों में जबताईं साधन अवस्था है आलस्य करके उपाय हीन क्षणमात्रको भी न होना और यह भी विचार चाहिये कि बिशेष धन सम्पत्ति स्त्री पुत्रादिक जो सर्व पदार्थ जगत् के नाशवान् और कारण हानि भजन के उपाधि रूपहैं और विषय में कुछ सुख नहीं है मेरेही

आत्मा का सुख है जैसा हम पहले कहि आये हैं तिस में मनको नहीं भटकाना अनुद्वेग रहना चाहिये (प्रश्न) हे महाराज श्रवण और मनन और निदध्यासन आदिक अन्त रंग साधन जो आपने पहले संक्षेप करके कहे हैं उनकी रीति विस्तार करके फिर वर्णन कीजिये (उत्तर) हे शिष्य जो सत्य शास्त्र वेदान्त उपनिषद सूत्रादिक हैं मन लगाकर उनका श्रवण करना इसीको श्रवण कहते हैं और उस सुने हुए को याद रख विचार करना कि शास्त्र ऐसा कहता है और मेरे मनका वर्ताव ऐसा है शास्त्रका अभिप्राय सत्य है अथवा मेरे मनका वर्त्ताव और प्रपंचका व्यवहार सत्य है पूर्ण सुख किसमें है और मैं कौन हूं और संसार क्या है परिणाम उसका क्या होगा इसी को मोक्ष कहते हैं और जब कि विचार और मनन से वेद और गुरु वाक्य अनुसार सत्य पदार्थ सुख प्रणामी को बुद्धि में निश्चय किया तो फिर अन्यथा का त्यागकर उसी सत्य पदार्थ में सब काल वृत्तियों का प्रवाह करना और सजातीय और विजातीय भेदका दूर कर देना उसी का नाम निदध्यासन कहते हैं सो प्रथम मनन में संशय विपर्यय का समाधान श्रवण और विचार और गुरु से प्रश्न करके करना होगा ब्रह्म के विशेषण अपनी आत्मा के विशेषण से मिलाते होंगे तब निश्चय होगी जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को छोड़कर चौथे पद तुरीय में रहना जैसा योगवाशिष्ठ में तीन पुष्प शिवपूजा में वर्णन हुये हैं अपने आत्मा का ज्ञान १ शान्ति २ और शमता ३ इनकरके शिव परमात्मा जो ब्रह्म निर्विकल्प शक्ति सहित जो

आदि शक्ति मूल प्रकृति है तिसकी नित्य पूजा करनी चाहिये मूल प्रकृति आदिशक्ति परमात्मा चैतन्य परिपूर्ण निर्विकारकी न्यारीनहीं है विशेष्य विशेषण की नाई है जैसेमणि और मणिकी कान्ति सो एकही जानना वोही अद्वैय शुद्ध निर्गुण ब्रह्म शक्ति सहित सगुण स्वरूप और जगत् रूप नाना भांति और अनेक रूप में भास रहा है सोई वो एक उपास्यदेव सबका है सगुण स्वरूप में शिवशक्ति राधाकृष्ण सीताराम विष्णुलक्ष्मी एकही है चैतन्य चिद्‌शिला है ये जगत् उसशिलाकी लकीरहै सो वही चैतन्य शक्ति पुरुष प्रकृति माया और विद्या और परा अचिन्त अनिर्वाच्य है वोही ब्रह्मारूप होकर जगत् को रचती है विष्णुरूप हो पालन करे है शिवरूप हो संहारकरैहै आपही समुद्ररूप होतीहै आप ही विष्णुरूपहो समुद्रमेंशयन करैहै सो शक्ति निर्विकल्प चैतन्य से अत्यन्त अभिन्न है जन्मानुजन्म के अध्यास से आत्मा को अनात्मा ब्रह्म चिदाकाशको जगत् अपने को देह मन इन्द्री वर्ण आश्रम दुखी सुखी पापी पुण्यात्मा अहंकार करके इस प्राणीने मानिरक्खा है सो यह अभ्यास का कारण है किसलिये किसदा से जैसा मां बाप इसको अभ्यास कराते आये तैसा यह अपने को मानता चला आया इसी को अज्ञान और यही अन्यथा भान है शुद्ध अन्तसहुये पश्चात् जब सद्गुरु महावाक्यकालक्ष्यार्थ करातेहैं तब इसको अपने स्वरूप का ज्ञानहोताहै और अज्ञान का नाशहोता है सो तूभी मिथ्या अभ्यासको छोड़कर अपनेनिजस्वरूपमें स्थित

हो जायगा इस अध्यास का एक दृष्टान्त तुमसे कहा जाताहै(दृष्टान्त)एक गांव में एक गड़रिया था उस के पास रेवर बकरियोंका रहताथा और उस गांव के निकट एक पहाड़ और बन भी था पहाड़ की खोह में सिंहिनी ने दो बच्चे दियेथे सो गड़रिया जो वहां जा निकला और सिंहिनी को वहां न देखा एक बच्चे को गड़रिया उठाला या और बकरियों में उसको रक्खा और एक बकरी बच्चे वाली के नीचे लगादिया बकरीके दूध से सिंह के बच्चे की पालना भई और बकरियों के रेवर में चरने लगा और बकरियों हीं की बोली बोलने लगा अपने स्वरूप को भूल कर यह अध्यास उस को जमगया कि मैं भी बकरी का बच्चा हूं एक दिन पहाड़ पर एक सिंहने आ य कर देखा कि पहाड़ के नीचे एक रेवर बकरियों का चररहाहै और उनके साथमें एक सिंह का बच्चा भी है उस को आश्चर्य्य हुआ और उसने गर्जना की गड़रिये ने अपना रेवर गांव की तरफ़ को हाँका बकरीवाला सिं-ह भी बकरियों के संग चलता भया जबपहाड़ वालेसिंह ने बकरी वाले सिंहको ठहराय कर पूंछा कि तू कौन है उसने कहा कि मैं बकरा हूं पहाड़वाला सिंह हँस कर बो-ला कि तू किस तरह से बकराहै तू तो सिंहहै तू अपने को किसतरह से बकरा बतलाता है और बकरियों के साथ क्यों पत्ते खाता फिरता है। तेरा भोजन मांस है उसने कहा कि तुही सिंह होगा मैं नहीं हूं मैं तो बकरा ही हूं पहाड़वाला सिंह बोलाकि तू मूढ़ है और अपने स्वरूप को भूल गया अपने हाथ पांव और पंजे को

देख और बकरियों के खुरों को देख जो तू बकरा होता तो तेरे भी पांव और खुर और मुखभी बकरियों का साही होता सो नहीं है और मैं सिंह हूं मेरे हाथ पांव और मुख को देख कि जैसे मेरे हाथ पांव मुखहैं ऐसे ही तेरे हैं जब बकरियों के संगी सिंह ने अपने सब अवय-व बकरियों से प्रतिकूल देखे और पहाड़ वाले सिंह के अनुकूल देखे तो मनमें भ्रम और विस्मय उत्पन्नहोता भया फिर पहाड़ वालासिंह नदी के किनारे उस को ले गया और अपनी परछांही जल में उस को दिखाई औ-र उसकीपरछांहीं भी उस को दिखाई और कहा कि अब तू जल में अपने स्वरूप और मेरे स्वरूप को विचार करके देख और बकरियों के स्वरूप को भी देख तेरा स्वरूप मेरे स्वरूप से मिलताहै जब बकरीवाले सिंह को निश्चयभया कि मैं सिंह ही हूं बकरा मैं नहीं हूं फिर उस सिंह से बोला कि मेरे हाथ और पांव और मुख सिंह कैसेही हैं परन्तु मैं बकरा कैसे भया जब पहाड़ वाला सिंह बोला कि तू बकरा तीन काल में भी नहीं है तुझ को बालक पनसे संग और अध्यास बकरियों का रहाहै इसी से तू अपने को बकरा मानता है सो यह मिथ्या अध्यास और कुसंग बकरियों का छोड़ और मेरे संग आनन्द में विचर सो बकरी वाला सिंह पहाड़ वाले सिंह के साथ विचरता भया तैसेही हे शिष्य जब सद्गुरु अपना आत्म स्वरूप का लक्ष्यार्थ युक्तियों करके कराते हैं तब शिष्य का मिथ्या अध्यास छूटता है मिथ्या अहंकार और मिथ्या अध्यास का त्याग चा-

हिये वेद ने जो लक्षण और विशेषण ब्रह्म सच्चिदानन्द के कहे हैं अपने आत्मा के विशेषण से मिलाने चाहिये विशेषण ये हैं सत् १ चिद् २ आनन्द ३ ज्ञान ४ नित्य ५ निराकार ६ साक्षी ७ द्रष्टा ८ अजर ९ अमर १० जगत् का कर्त्ता ११ भर्त्ता १२ अकर्त्ता १३ अभोक्ता १४ सो ये लक्षण आत्मा विशेष भाग चैतन्य अपने स्वरूप में देखने चाहिये सत् अर्थात् है सो सब जानते हैं कि हम हैं और सब कोई प्राणी यह भी जानते हैं कि पूर्व कृत्य करके हम को यह फल मिला इस जन्म के कृत्य का फल आगे भोगेंगे तो तीन जन्म का ज्ञाता हुआ और यह देह जो नाश हो जातीहै असत्य है और यह देह धारी सत्य है हम सत्य हैं पहले भी थे आगे भी होंगे चिद् चैतन्य के अर्थहैंसो इस प्राणीको चैतन्यता प्रत्यक्ष है क्योंकि बोलता चलता देखता सुनता है मरण पीछे देह जड़ हो जाता है आनंद प्रिय वस्तु में है सब प्राणीमात्र को अपना जीवात्मा अत्यन्त प्यारा होताहै सारे सुख इस जीवात्मा ही से भान होते हैं॥ ज्ञान यह भी लक्षण तुम्हारे ही आत्मा का है सकल वस्तु और पदार्थ आत्मा ही करके जाने जाते हैं और इसी आत्मा से अपने निज स्वरूप का भी ज्ञान होता है ज्ञान स्वरूप का भी लक्षण आत्मा में है निराकार देखो तुम्हारे निज स्वरूप आत्मा में कोई आकार प्रतीत नहीं होता न आदि में न अंत में न मध्य में और यह जो आकार देह का दीखता है सो नाशवान् है नित्य देह में बाल पंन तरुणाई जरा अवस्था दुबलापन मोटापन सोचना

जागना मरना जो प्रतीत होता है सो यह सब अवस्था देह की है सो आगमापायी और नाशवान् हैं अपना आत्मा इन अवस्थाओं में एकसा बना रहता है आत्मा की देह के साथ अवस्था नहीं बदली जाती और नाशभी नहीं होता इसलिये नित्यता जीव आत्मा की प्रत्यक्ष है साक्षी द्रष्टा विचार करना चाहिये कि तुम अपने आत्माही करके अपने को और अपने कर्मोंको और सबको देखते हो और जानतेहो तुम्हारा ही जीवात्मा सब का साक्षी और प्रकाशने वाला और जानने वाला प्रत्यक्ष है परिपूर्ण ये लक्षण भी इसरीति से आत्मामें हैं कि यहदेह तो मथुरामें है और बनारस का ध्यान किया तो क्षणमात्र में ही सब आकार और पदार्थ बनारस के अन्तर्य्य दृष्टिमें आजाते हैं जगत्का कर्त्ता यह लक्षणभी तुम्हारे आत्मामें बनाहुआहै प्रथम तो जाग्रत में ही अपनेही संकल्प विकल्प करके प्रपंच जगत्का खड़ाकरलेते हो और स्वप्न अवस्थामें भी क्षणमात्रमें ही एक प्रपंच तुम देखलेतेहो और जाग्रत में उसका नाशभी करदेतेहो और स्वप्न के स्वरूपों से व्यवहार भी करतेहो तिस कारण जगत्के कर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता तुमहीं ठहरे अपनेही आत्मा करके जगत् भासता है मरण पीछे नहीं भासताहै अजर अमरकेभी लक्षण तुम्हारे ही स्वरूप में देहके साथी न होनेसे पाये जाते हैं कि तेरा स्वरूप आत्मा नित्य एकसा बनारहता है जरामरण उसको नहीं देहको है अकर्त्ता अभोक्ता देखना चाहिये कि तुम्हारा निज स्वरूप कोई कर्म्म नहीं

करता न भोगता है देह इंद्रियादिक क्रिया करते हैं सोई भोगते हैं बिना देह इंद्रिय के क्रिया भोग बनती नहीं तुम्हारा स्वरूप इनसे न्यारा है मिथ्या अहंवृत्ति करके जो सुखाकार वृत्ति और दुःखाकार वृत्ति होती है सो भ्रमकरके अज्ञान अवस्थामें मनका जो मानाहुआ है इसी के मिटाने के वास्ते उपदेश है इसी रीति करके विचार कर अपने स्वरूप को निश्चय करो (प्रश्न) हे स्वामी जो आपने उपदेश किया सोसब सत्यहैऔर मैंने अपने निज स्वरूप को जाना परंतु यह संशय और है कि आपने ब्रह्म परमात्मा को आनंद स्वरूप वर्णन कर ऐसा कहा है कि दुःख और क्लेश का आत्मा में लेशनहींहै और दुःखाकर वृत्ति होनेसे ज्ञानी अज्ञानी सबकोही अनुभव दुःखका होता है इसलिये अद्वैत और सुख स्वरूपतामें विकार प्रतीत होताहै (उत्तर) हे शिष्य पहले भी हमकह आये हैं और अब फिर कहा जाता है कि यह दुःख और क्लेश अज्ञानका कार्य्यहै जब ताईं अपने स्वरूपका पूर्ण और दृढ़ ज्ञान नहींहोता और वृत्तियों का प्रवाह अच्छी तरह नहीं होता दुःख माना जाता है ऐसा अज्ञान कार्य्य अविद्या का है अविद्या एक अंग माया इच्छा शक्ति उसी ब्रह्मकी है जो अत्यंत अभिन्न है दूसरा पदार्थ नहीं है जिससे अद्वैत में विकार आवै और अविद्या के हटनेसे आनंद स्वरूपता में भी विकार नहीं आसक्ता है ये सब प्रपंच पुरुष प्रकृति मयहैं जैसे जलकारस एकमधुरता और शीतलता है सो अदृष्ट और निराकार है रसना

इंद्रिय करके जानाजाता है और द्रवता और श्वेतता जलका स्वरूपहै सो मधुरता और शीतलता गुणद्रवता और श्वेतता स्वरूपसे भिन्न नहीं तैसेही परमात्मा सुख रूप ज्ञान स्वरूप अपनी ईक्षण आदिक शक्ति लिये हुये प्रपंच रूप भान होरहाहै यह कर्त्तव्य अज्ञान द्वारा करके सुख दुःखकर्त्ता भोक्ता अहंकार मोहका हेतुहै तिसके दूर होनेसे दुःखका अभाव होताहै अपना आत्मा अक्रिय अभोक्ता साधक बाधकनहीं मनन आदिक साधन करके जो निज स्वरूपमें स्थिति होती है सोई दुःख रहित और जीवन्मुक्ति है जैसे काष्ठ और काष्ठके अंदरकी अग्नि जो ढकीभई और सामान्य है सो परस्पर की रगड़ से वो अग्नि विशेष भाव होकर उसी काष्ठ को जलादेती है तैसेही अंत रंगकी साधन की रगड़से ज्ञान अग्नि प्रकाशहोय कर्म और मिथ्या अध्यास जो दुःखरूपी हैं दग्ध करदेते हैं ज्ञानी अपने स्वरूप को जब निश्चय कर देहके ममता को जिससे दुःख प्रतीत होता है त्याग देताहै विकल नहीं होता देखना चाहिये कि जिसने देहको और देहके सम्बंधियों स्त्री पुत्रादिकों को जो मोह करके अपना मान रक्खा है उनके दुःख रोग मरणादिकसे दुःखीहोताहै अपरजनके मरणादिक से कि अपनपौ उसमें नहीं मानाहै किसी को कुछ दुःख नहीं होता सो इसदुःखका कारण मोह और मिथ्या अहंकार और ममता मनका माना हुआ है इसी को दूर करना दुःखकी निवृत्ति और आनंदकी प्राप्ति ज्ञान अवस्था है जिस करके विक्षेपता वृत्ति जो दुःखका स्वरूप

हैदूरहोना और अपनेआत्मा चैतन्यमें वृत्तियोंका ठहरा
ना यहीसुखका स्वरूपहै अन्वय व्यतिरेकका विचार वै-
राग्यसहित करकेवृत्तिका जमाव होताहै सो दुःख और
क्लेशको दूरकर देताहै(प्रश्न) हेस्वामीअन्वय व्यतिरेक
किसको कहते हैं उसके साधनकी विधिवर्णन कीजिये
(उत्तर)हेशिष्य व्यतिरेककी विधियहहै कि अपनेनिज
स्वरूप आत्मा विचार और गुरुवेद वाक्य युक्तियों स-
हित अनुभवकरनेसे शरीर इन्द्रियादिकऔरप्रपंच जड़
पदार्थ से न्यारा निश्चयकर लेनाहै स्थूलशरीर पंचम-
हाभूतका कार्य्य नाशवान् है सो मैं नहीं हूं सूक्ष्मशरीर
समूह ज्ञानइंद्रिय अंतःकरण का है सो उस को उस के
देवता चलारहेहैं मेरे स्वरूपसे न्यारे हैं यहभी मैं नहीं
हूं प्राणवायु पांचस्वरूप करके शरीर में क्रियाकर रहेहैं
यह भी मैं नहीं हूं अहंकार जो समीपी आत्माका है इस
में सत्य असत्य का विचार करनाचाहियेजो असत्य प-
दार्थ हैं उन में अहंमता ममता कात्यागना सत्य स्वरूप
आत्मा में धारण करना व्यतिरेक कहलाता है और अ-
न्वय की रीति यह है कि जो यह सब देहादिक प्रपंच
अपने ही आत्माका कल्पित है सो कल्पना करनेवाला
अद्वय परिपूर्ण जगतरूपहै लय चिंतन की रीतिमेंलय
चिंतन इसको कहते हैं कि जो ईक्षण शक्ति आत्माकी
है सोईभई माया त्रिगुणात्मक जिस्से पंचभूत उत्पन्न
होकर संसार प्रकटभया फिर वही माया महाप्रलय के
समयअथवा समाधिकाल अथवासुषुप्ति अवस्थामें सब
दृश्य वर्ग को आपे में लीनकर ब्रह्म में लीनहोजाती है

जबकिअपनेही कल्पना मात्र यह प्रपंच ठहरा तो केवल आपही ठहरा जैसे मकड़ी और मकड़ीका जाला (प्रश्न) हे स्वामी आत्मा को ज्ञान स्वरूप आपवर्णन करते हो और ज्ञान अर्थजाननेके हैं सो प्राणी मात्र ज्ञान करके सब पदार्थोंको ज्ञानही करके जानते हैं और यह ज्ञान सबको प्राप्तहै और अज्ञान न जाननेको कहते हैं और ज्ञान अज्ञान में परस्पर विरोधहै इसलिये अज्ञानका तो अभाव प्रतीत होताहै फिरआप अज्ञान किस को ठहरातेहो (उत्तर) हेशिष्य आत्मा ज्ञानस्वरूपही है और जहां ज्ञान है वहां अज्ञान की समाई भी नहीं होती और अपने आत्मा करकेही सबको पदार्थोंका ज्ञान होताहै और आत्मा ज्ञानस्वरूपसूर्य्य और चंद्रमा और दीपककी नाईं अपनीसत्ता करके प्रकाशदेनेवाला जैसा अपनेस्वरूपकेजानने में प्रकाशता है तैसेही घटपटादिकके भी प्रपंच जनावताहै जैसे जिसने रज्जु को रज्जु जाना तिसमेंभी सत्ताज्ञान स्वरूपकीहैऔर जिसने भ्रम करके रज्जु को सर्पजाना सो भी आत्माही की ज्ञान स्वरूपता करके जाना क्योंकि आत्मापरिपूर्ण ज्ञानस्वरूप करके है परंतु जिसने रज्जु को रज्जु जाना है तो यह जानना उसका सत्य और यथार्थ है अभय और सुख कादेनेवालाहै और जिसने सर्प जानाहै सो भ्रांतिकरके जाना है सो असत्य है भय और दुःखका देनेवाला है सो इसका नाम अन्यथा भानहै इसीको अज्ञान कहतेहैं क्योंकि सत्य पदार्थ अपने आत्माका न जानना ज्ञानके प्रतिकूल है वास्तव में ज्ञान वोही है जो श्रवण मनन

आदिक साधेसे अपने निज स्वरूप आत्मा अधिष्ठानको जाने और असत्य पदार्थ प्रपंचादिक के जानने में ज्ञान की संज्ञा नहींहै वो अन्यथा भान और अज्ञानही गिना जायगा आत्मा के ज्ञानमें जैसे प्रपंच नाश होजाता है उसी क्षण अज्ञानका भी नाश होजाता है तिमिर प्रकाश की नाईं जहां प्रकाश है वहां तिमिर नहीं जहां प्रकाश नहीं है वहां तिमिर है यद्यपि जानना तो अपने आत्मा का स्वरूपही है परंतु भ्रम करके कुछका कुछ जानना इसी अन्यथा भानको अज्ञान कहते हैं और जब ज्ञान आत्मा सुख रूपी की प्राप्ति होतेही अज्ञान दुखःरूपकी निवृत्ति है (प्रश्न) हे स्वामी स्वप्न और जाग्रत और सुषुप्ति और तुरीय चार अवस्था आपने जीवात्मा की वर्णन कीहैं सो स्वप्न और जाग्रत की प्रतीति भिन्न भिन्न मालूम होती है सादृश्यता नहीं है इस भांति करके कि प्राणी मात्रको स्वप्न अवस्था न्यारी न्यारी होतीहै एकके स्वप्न की दूसरे को खबर नहीं होती है और नित्य नई सूरत का स्वप्न होताहै और थोड़े काल रहताहै जाग्रत अवस्थामें सब देह धारियों को जन्म से मरण ताईं एक सेही पदार्थ दीखतेहैं जो पदार्थ भोजन वस्त्रादिक और देश भवनादिक और देह के सम्बन्धि जैसे कल्ह थे वैसेही आज प्रतीत होते हैं तो स्वप्न अवस्था और जाग्रत सादृश्य नहीं प्रतीत होतीहैं परंतु सुषुप्ति और तुरीय एकसीही प्रतीत होतीहैं जो तुरीय में देह इंद्रिय मन बुद्धि और प्रपंच का अभाव होताहै सोई सुषुप्ति अवस्थामें अभाव होजाताहै और यह सुषुप्ति अवस्था सब

प्राणी मात्र ज्ञानी अज्ञानीको एकसी होतीहै और आपने चौथी अवस्था तुरीयको ज्ञान अवस्था सातवीं भूमिकामें अत्यन्त उत्तम और दुर्लभ वर्णन किया है इसमें क्या कारण है (उत्तर) हे शिष्य स्थूल देह करके जो चैतन्य कूटस्थ अविद्योपहित है तिसकी निद्रा और स्वप्न थोड़ेही कालकी है ब्रह्माण्ड अभिमानी चैतन्य ईश्वरका स्वप्न दीर्घ कालकाहै जिसकी सुषुप्ति अवस्था महाप्रलय है पिंड अभिमानी चैतन्यकी स्वप्न अवस्था थोड़े काल कीहै तैसेही सुषुप्तिभी उसकी थोड़ेही कालकीहै जिसको नित्यप्रलय कहते हैं शुद्धसत्वमय मायामेंप्रतिबिंब ईश्वर मायाके वशनहींहै मायाको अपने वशकर रक्खाहै समर्थ और सर्वज्ञ है सोई विराट स्वरूपहै जाग्रत अवस्था प्राणियोंकीईश्वर की स्वप्न अवस्था जानोसो काल की लघुता दीर्घता का यही कारण है आत्मा ज्ञान स्वरूप का यहलीला है कि ईश्वर जीव दोनों में यथायोग्य सामर्थ्य औरसत्ता और प्रकाश देरहाहै और अभिप्राय सुनोकि जो स्वप्नमें प्रपंच तुमदेखते हो तो जितने मनुष्य और पदार्थ स्वप्न के हैं सब रचे भये तुम्हारेही हैं तुमभी उन से बोल चाल व्यवहार करते हो और वे स्वप्न केमनुष्य तुम से भी व्यवहारादिक करते हैं तैसेही व्यवहार जाग्रत काजानो दूसरे स्वप्न और जाग्रत में यह नेम नहींहै कि समस्त पदार्थ नये ही हों अथवा पहले ही से हों सम विषम दोनों ही में हैं और यह विचार करना चाहिये कि स्वप्न प्रपंच में देश काल और सामग्री एक क्षण में भान होताहै और जाग्रत समय एकक्षण मेंही नाशको

प्राप्तहोताहै तो अपनाही आत्मा मन द्वारा करके सर्व-
रूप होजाता है तैसेही जाग्रत प्रपंच को आगमापायी
जानो चैतन्य की सत्ता करके मन बुद्धिकी रचना दोनों
अवस्थामें समानहै और सुषुप्ति और तुरीय में निर्विक-
ल्पता तो समान है परन्तु सुषुप्तिमें मन बुद्धि इन्द्रिय आ
दिकालय अज्ञान मेंहै सोकल्याणकारीनहीं है और तुरी
य अवस्था में मन बुद्धि इंद्रिय आदिकका लयज्ञानात्मा
सुख स्वरूप में होता है इसलिये यह चौथी अवस्था
अति उत्तम कल्याणकारी नित्यसुखकी भोग करानेहारी
है सो सबकोनहीं होती किसी महात्मापूर्णज्ञानीको होती
है इनदोनों अवस्थाओं में इतनाही भेदहै और जगत्के
गुणा में और चिदाकाशकेगुणोंमें जो संशय औरभेद है
सोपहलेभी हम कहआये हैं और फिरभी कहतेहैं कि ये
प्रपंच दृश्य वर्ग अज्ञान करके प्रतीतमात्र हैं वोही अ-
द्वय आत्मा सौभाविक व्यापकता धारेहुये भास रहा है
ऐसा दृढ़ निश्चय होजाना और मिथ्या अहंकार में तूसे
न्याराहो निर्वासना होजाना मुक्तिका हेतुहै जैसा गोसाईं
तुलसीदासजी का कहाहुआ है (दोहा) सीतारामहिं
छोड़कर और सेइये कौन। तुलसी देत बने नहीं बड़े २
से नौन ॥ (दोहा) तुलसी सीतारामको भजत न कीजै
शंक। आदि अंत प्रतिपाल है जैसे नवका अंक ॥ हे
शिष्य जगत् को पुरुष प्रकृति सीताराम शिवशक्तिमय
एकही रूपहैं जानना चाहिये मिथ्या अहंकार और वा-
सनाका त्याग चाहिये (प्रश्न) हेस्वामी जबकि अपना
स्वरूप अद्वय अक्रिय व्यापक निश्चय भया और यह

दृश्य वर्ग कल्पित ठहरा तो साधन कर्म उपासना आदिकजो बंधनरूपमोक्षके विरोधी प्रतीतहोतेहैं किसहेतुहैं (उत्तर) शिष्य पहलेभी हमकह चुकेहैं और फिरकहतेहैं जैसे जगत् कल्पित है कर्म उपासना भी कल्पित ही हैं परंतु निष्काम कर्म भगवद्भजनादिक अंतःकरण शुद्धि हेतु सहायक ज्ञान का है जब ताईं प्राणी को देह और देह के सम्बंधियों का अध्यास ममताका बना हुआ है तब ताईं कर्मउपासना ही कर्त्तव्यहै शास्त्र ने सात जो भूमिका वर्णन की हैं जिनमें शुभ इच्छा १ स्वविचारना २ तनोमानसा ३ सतापन ४ ये चार भूमि का तो साधन रूप हैं और पदार्था भावनि और असंगत और तुरीय ये तीन अवस्था सिद्धि रूपहैं सो ये सातों अवस्था कई जन्म में भुगतती हैं इसलिये गुरु वेद वाक्य अनुसार साधन करना अवश्य है अपने सत्य स्वरूप में निश्चय भये उपरांत कर्तृत्व भोक्तृत्वनहीं रहता इन साधनों को करतेकरते वृत्तियों और अहंकार का प्रवाह अनात्माकी ओरसे हटाना और परमात्माकी ओर प्रवाह करना चाहिये और भक्तिका आसरा रखना चाहियें कार्य अकार्य में शास्त्र के वाक्यको सत्य और प्रमाण जानना चाहिये मलीन वासना और मलीन कर्म जन्म मरण दुःखों के हेतु हैं शुभकर्म और शुभ वासना मन बुद्धिके निर्मल करनेवाले परमपदके प्राप्त करानेहारे हैं उपासनाके २ दो अंगहैं एक सगुण द्वितीय निर्गुण प्रथम सीढ़ी सगुण उपासना है उसके प्रणाममें प्रत्येक और अहंग्रह निर्गुण उपासनाकी प्राप्तिहोती है प्रत्येक

उपासना में दास और स्वामी का भाव बनारहताहै और अहंग्रह में इस भाव और द्वैत और भेदका अभाव है एक अद्वय ब्रह्म मैं हूं मेराही कल्पना कियाभया प्रपंच दृश्य वर्ग है अपनी वृत्तिमें ऐसा दृढ़करना होता है सो साधन सगुण उपासना और भेद भक्ति करते करते समयपर किसी जन्ममें अभेद भक्तिका दृढ़ अपने स्वरूप में स्थिति होजाताहै उसी को प्रेमकहते हैं उसीको ज्ञान कहतेहैं वोही जीवन्मुक्तिहै सगुण स्वरूपकी उपासनामें जिस भावनासे चित्त जमाया जाय किसी कालमें अपना आत्माही सच्चिदानंद स्वरूप भावना अनुसार साक्षादर्शन देकर कृतार्थ कर देताहै जैसे कि पहले भक्तजनों को साक्षात् ईश्वरके दर्शनहो कृतार्थभये हैं आत्माके धामका पंथ कर्मउपासना निष्काम और नवधाभक्तिहै बिना आलस्य के शास्त्रके वाक्यका प्रमाण करके जैसा सोलहवें अध्याय गीताजीकेमें श्रीकृष्णजीने वर्णन किये हैं (श्लोक) यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्त्तते काम कारतः ॥ नच सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् २३ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणंते कार्या कार्य व्यवस्थितौ ॥ ज्ञात्वाशास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि २४ विचार के समय मन की वृत्ति पर जो प्रतिबंधक है दृष्टि रखनी चाहिये जैसे भूतकाल कृतका जो मनको स्मरणहोताहै अर्थात् पहले हमने ऐसा किया सो ऐसा भया ऐसा करते तो ऐसा होता सोये व्यर्थ । और विक्षेप के बढ़ानेहारे होते हैं इन संकल्प विकल्पोंसे मनको हटाना ऐसेही भविष्यत्कालके इस विचारसे कि भावी प्रबल है अपना किया

कुछ होता नहीं यह प्राणी विचारता कुछ है और होता कुछहै प्रकृति प्रेरणा करके आपकरालेतीहै और आयु और प्रारब्ध फल देती रहती है तो इसमें भी शोच विचार करना व्यर्थ है और वर्त्तमान काल अति सूक्ष्म है इस में जैसा आगे आया बिना हर्ष शोक के शरीर का प्रारब्ध समझ भोगलेना चाहिये इसीभांति अपनी वृत्तियोंपर दृष्टि रख उपाधी दूर करता रहै और परमेश्वर उपास्यदेवके आराधन और ध्यान विचारमें अपनी वृत्तियों को लगाये रहे जिस्से तदाकार वृत्ति होकर अपने स्वरूप में स्थित होजाय और अपने अन्तर्य रोगों का अहर्निश विचार करतारहे और शास्त्र के कथनसे अपनी कृत और सुभाव को मिलाता रहै जो खोंट देखै और शास्त्रके प्रतिकूल जाने उनको पुरुषार्थ प्रयत्न करके दूरकरतारहे फिरसद्गुरु ब्रह्मनिष्ठकीशरण हो क्योंकि वेद पुराण धनको बतलातेहैं और सद्गुरु धन को दिखला देते हैं इसका दृष्टान्त (दृष्टान्त) एक साहूकार था जब मरण काल उसके समीप आया तो एक बीजक धनका उसने पुत्रों कोदिया कि इतना धन मन्दिरके कलशसे इतने हाथपर चैत सुदी ८ को पहर दिन चढ़े रक्खा है जब सन्तान साहूकार के पास ऊपरका धन नहीं रहा तब उसने बही के पत्रमें बीजक देखकर दोनों मन्दिर जो साहूकार के बनायेहुयेथे शिखर और आसपास शिखरके खुलवाकर और खुदवाकर ढूंढ़ा धन नहीं मिला एक समय कोई महात्मा उस नगरमें आनिकला उन महात्मासे साहूकार के पुत्रोंने

बीजक दिखाकर न मिलना धन का वर्णन किया उस बुद्धिमान ने अपने मन में विचारकर बीजक के अर्थों का निश्चय किया और कहा कि तुम हमको चैत सुदी ८ के प्रातःकाल में बुला लेना हम बीजक के धन का उपाय बतावेंगे सो चैत्र सुदी ८ का जबदिन आया तो साहूकार के पुत्र उस महात्मा को बुलाय लाये महात्मा ने पहरदिनचढ़े मंदिरके शिखरकी छायाहाथों से नापी और बीजक में जितने हाथका पतालिखाथा उसजगह को खुदवाया सो धननिकल आया ऐसेही हे शिष्य सद्गुरु विचारमान परमधन आत्मारूपीकी प्राप्तिकरादेते हैं बिना सद्गुरु की कृपा के वस्तुका लाभ नहींहोता योगवाशिष्ठ के निर्वाण प्रकरणमें आख्यानहै किबुद्धि जो माया के अंग से है और माया ईक्षणशक्ति चैतन्यकीहै उसबुद्धि में सबके हृदय में चैतन्य परिपूर्ण प्रतिबिंबवत् है यद्यपि बुद्धि कल्पित चैतन्यकी है परंतु प्रतिबिंब के चकाचक से चैतन्य और बुद्धि के परस्पर अन्योन्य भाव होइरहे हैं और चिद्ग्रंथी लग आत्मा अपने गुणों और स्वरूप को तो भूलगया और बुद्धिके गुणमिथ्या अहंकार में प्रवृत्तभया और चैतन्यके चिदानन्द ज्ञानादिक चेष्टा बुद्धि में समागई तिसकाहीनाम जीवभया जैसे अग्नि निरवयव निराकार है एकगुण दाहकता से अग्नि जानीजाती है काष्ठ अथवा लोहादिक के मिलने से जो परस्पर भावहुआ तो दाहकता गुण अग्निका काष्ठ और लोहमें आया और आकार लंबाटेढ़ा गोलकाष्ठ लोह कोले आदिकका अग्नि में

प्रतीत भया इसीभांति अन्योन्य धर्म चैतन्य और बुद्धि से यह प्रपंच है वोही अद्वय आत्मा परिपूर्ण अपनी कल्पना से सत्ता और चैतन्यता बुद्धि को दियेहुये सब के हृदयमें बुद्धिको नचारहाहै और मिथ्या अहंकार करके बन्धनरूपी कर्ममें और मैं और तू के भ्रममें भ्रमता है यही मोहरूपी निद्राहै ता निद्राका यह प्रपंच अनेक भांतिकरके स्वप्न देखरहा है हे शिष्य इस भ्रांति और मोह निद्राका प्रयत्नकरके मिटाना स्वरूप में स्थित हो जाना है (प्रश्न) हे स्वामी धन्यहो आपकी कृपाकरके मेरे संशय विपर्यय दूरभये एकसंशय थोड़ासी रही है उसको भी निवृत्त कीजिये और वह यह है जबकि परमात्मा सर्व व्यापक अजर अमर ज्ञान स्वरूप सच्चिदानन्द घन एकही है तिसकाही ध्यान स्मरण पूजन सब क्यों नहीं करते हैं सबकामत न्यारा न्यारा क्योंहै कोई किसीको पूजताहै कोई किसीको भजताहै और अपने मतको उत्तम कहतेहैं दूसरेके मतको न्यूनकहतेहैं और बहुतसे जन विद्यावान्‌भी पाषाणादिक प्रतिमाका पूजन करतेहैं और कोई कोई प्रतिमा पूजनको अच्छा नहीं कहते वेदसे प्रतिकूलबताते हैं और जो वैष्णव हैं सो शिवकी निंदाकरतेहैं जोशैवीहैं सोविष्णुकी निंदाकरतेहैं और जोकोई शक्तिके उपासकहैं सोशक्तिहीकोमुख्यजानतेहैंकोई गणेशजीको कोई सूर्य्यको कोईअग्निहीको पूजतेहैं तो यहनिन्दा स्तुति और विपरीतविरोध मतोंमें हो रहाहै इसका क्या कारणहै और निश्चय कल्याणकारी किसकी उपासना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य शास्त्रने

वास्ते कृतार्थ होने जीवके अनेक पंथ साधनरूपी दिख लाये हैं कि किसी पन्थ पर यहप्राणी चलकर धामको पहुंचे तात्पर्य यह कि अच्छे सज्जन और मुनीश्वरोंने प्राकृत मनुष्यों के उपदेशके समय जैसा उनका अधि-कार और संस्कार देखा और जैसी उनकी रुचि और अन्तःकरणकी वृत्ति देखी वैसाही उपदेश किया और इनके पीछे जो उनकी संतान और शिष्य होते गये उसी मार्गपर चलते गये और कुछ पक्षभी फैलतारहा वास्तवमें तो परमेश्वर का धाम एकही है रस्तेही का फेर समझना चाहिये जैसे कोई एक नगर किसी देशमें है और उसके कई रास्तेहैं पंथके चलनेवालेको चाहिये कि उनमें से कोई एक मार्ग जिसका उपदेश गुरूने कियाहै चलाजाय चलते चलते आगे पीछे पहुंचरहैगा अपर मार्गोंमें मनका भटकाना और दोषका निकालना नहीं चाहिये क्योंकि प्रणाम सब मार्गोंका वोही अद्वय सच्चिदानंद ब्रह्मका धामहै और सब उपास्य देवों का वोही आत्मा सर्व व्यापक है दूसरे सगुण उपासनाका अभिप्राय यह है कि चैतन्य निराकार अचिन्त्य परेसे परेहै जैसा गीताजीका लेखहै कि इंद्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है तो प्रथम ही उपसना निर्गुण निराकार जो मन बुद्धि का विषय नहीं क्योंकर बनसके है और जन्मानु जन्म का जो प्रवाह वृत्तियों का अनात्मा में चलाआता है शीघ्र एकही बेर उस प्रवाह का फेरना कठिनहै और जो रोग अन्तःकरण में भरेहुये हैं सो बिना साधन और विचार

रूपी औषध और त्याग रूपी पथ्यके क्योंकर दूर होसे-
कते हैं और यह पदार्थ ब्रह्मविद्या का मलीन अन्तः-
करण में ठहर नहीं सकता तिस कारण भगवत और
भगवतजनों सद्गुरु आचार्य्यों ने शिष्य के अधिकार
और संस्कार की तारतम्यता विचारकर उपदेश कर्म
उपासना सगुण रूप देवादिक का करते आये हैं सोई
मत और मार्ग भये हैं साधन करनेवाले को जो करते
करते कुछ सिद्धि और सुखमिला उसमें उसी पंथ की
स्तुति कर ग्रंथ रचदिया अपरजन को दूसरे साधन से
कुछ सिद्धि मिली उसने उसरीति करके अपना मत
खड़ाकरदिया शिष्यके निश्चय करानेके हेतु अपने उपा-
स्य देवकी बड़ाई अपर देवादिककी न्यूनता वर्णनकरदी
वेदमें जोमुख्य उपासना विष्णु और शिव और भगवती
शक्ति और गणेश और सूर्य्यनारायणकी ४ पांच प्रकार
कर आदिसे वेदमें लिखीहुईहै सो वेद अनुकूल उपासना
तो कर्त्तव्य और कल्याणकारी है और जो मत पीछे वेद
प्रतिकूल अपनी अपनी मति अनुसार रच लिये हैं सो
अकर्त्तव्य हैं और इस देहधारी के उद्धार निमित्त जो
वेदने वर्णन किये हैं तिनमें पहली भूमिका शुभकर्म
निष्काम मल के रोग की दूर करने वाली है दूसरी भूमि-
का उपासना है जिस को भक्ति कहते हैं चित्त की विक्षेप-
ता दूर करनेवाली और मनको एकाग्र करनेवाली है
सो शास्त्र की रीति करके जो ये दोनों साधन किये जावें
तब यह प्राणी ज्ञान का अधिकारी होता है इस काल में
वेद विहित कर्म उपासना निष्कामता से कम होते हैं

कामना लियेहुये लोकरंजन विषय रूपी जो अनेक मत फैलगये हैं तिस कारण सिद्धि और शांति के पद की प्राप्ति बहुत कम होती है आवागमन पुण्य पापका फल भोग बना रहता है अध्यात्मविद्या विशेष करके कथन मात्रही रहगई है वैराग्य और तितिक्षा विचार और समता गृहस्थियों और वेषधारियों में भी बहुत कम कहीं कहीं प्रतीत होता है उपासना के पंथ जो वेदोक्त हैं यद्यपि भिन्न भिन्न भी हों और निन्दा स्तुति भी हों करने योग्य हैं और उन की न्यारी न्यारी रीति और सम विषमता निन्दा स्तुति पर दृष्टि करनी नहीं चाहिये क्योंकि परिणाम धाम तो सब मार्गों का एक ही है और वही एक अदृश्य चैतन्य व्यापक सब रूपों में फलदाय-य है जिस स्वरूप की उपासना जो गुरू ने बताई है उसी को सर्वोपरि जान कर मनकी वृत्ति जमानी चाहिये और सब में उसी अपने उपास्य देवको विचारना और देखना चाहिये सतोगुण के सहारे से रजोगुण तमो-गुण घटाना और मन के विकारों को हटाना चाहिये संचित कर्म शुभाशुभ के अनुसार देहधारी का स्वभाव और बासना होती है सो जो मलीन बासना और अशुभ संस्कार पिछले कर्म करके अपने हृदय में प्र-तीत होते हैं सो ईश्वर आराधन आदिक शुभ साधनों से दूर होजाते हैं यद्यपि गुरू और वेद अधिकार देख-कर अनेक भांति करके उपदेश करते हैं तिस करके ही अनेक मत और साधन हो गये हैं तदपि दृढ़ता और निश्चय एकहीमें कर विचार करतारहै और वेद के प्रति-

कूल नचले और गुरू आचार्य्य भी जैसे लक्षण पहले हम कह आये हैं निर्लोभ दयावान् विद्या वैराग्य संयुक्त ढूढ़ने चाहिये जो गुरू दीक्षा देनेवाले में लोभ और विकार होगा तो उसका उपदेश कल्याणकारी न होगा और शिष्य भी ऐसी ही होय जैसे पहले लक्षण हम कह आयेहैं अपने उपास्यदेवमें दृढ़ करे और सब ओर मनका भटकावना विपरीत विरोध निन्दास्तुति पर दृष्टि का वाद करना अनुचित और अकल्याणता है गीता जी में श्री कृष्ण महाराज ने वर्णन कियाहै कि मैं ही एक सब में हूं भावना अनुसार जिस रूप का उपासक होय उसी रूप में उसको दर्शन और फल देता हूं और प्रतिमा का पूजन भी शास्त्र से विरुद्ध नहींहै प्रथम चित्त के जमावने और भक्ति बढ़ावनेके हेतु एक साधन उपासना के ही अंग मेंसे है गीताजीके बारहवें अध्याय के ६ नवें श्लोक में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुनको उपदेश कियाहै कि जो और साधनों में तेरा चित्त नहीं लगै तो प्रतिमा पूजन में मनको लगावै और मेरी लीला चरित्र और गुणानुवाद करते रहो सो मुझको प्राप्त होगे और ऐसाही उपदेश प्रतिमा पूजन का एकादश स्कन्ध ११ भागवतमें उद्धव जी प्रति भया है यद्यपि यह साधन गुड़ियोंकासा खेलहै तदपि जो मनुष्य मतिमन्द विद्या सामर्थ्य से हीन देखे उनके हेतु प्रथम प्रतिमा पूजनका ही साधन बतलायागया है सो उसमें इतनी बातहै कि इस साधनवाला निष्कामता सहित विधि सहित प्रतिमा में ईश्वर अपने उपास्य देवको जाने और निश्चय करें

पाषाण बुद्धि न रक्खे और निषेधकाम्य कर्म से अपने मन बुद्धिकोरोके और भगवत् कीर्त्तन और श्रवण और सत्संग साधु गुरु सेवामें पुरुषार्थ कर नेष्टाको बढ़ाता जाय क्योंकि गुड़ियों का खेल जो बालअवस्था में लड़-कियां खेलती हैं जब स्यानी हो विवाहादिक होजाताहै सो जो चरित्र और खेल गुड़ियों के साथ करतीथीं अ-पने में सो प्रतीत वो व्यवहार होने लगता है सो खेल गुड़ियों का आपही आप छूटजाता है तैसेही प्रतिमा पूजन आदिक साधनों में मनको जमाते जमाते ध्यान समाधि पर पहुंचजायगा प्रतिमापूजन आपही छूट-जायगा और एक बात यह भी विचारनी चाहिये कि जब परमेश्वर परमात्मा एक सर्वव्यापी परिपूर्ण है और सब मतवाले उसकी पूर्णताको मानतेहैं तो पाषाणादिक में क्या उसका स्वरूपनहीं है सो इन पाषाणादिक मू-र्त्तियों का पूजन वेद विरुद्ध और अनुचित नहीं है प्र-थम सीढ़ी उपासनाकी यह भी है जैसे बालकको प्रथम ओनामासी आदिकका अभ्यास करातेहैं जिससे अक्षरों का पहिचानना और विद्या पढ़कर विद्यावानहोना बनता है तैसेही इस आचरणको जानो दूसरे मंदिरादिक ब-नाने और मूर्त्तियों के स्थापित करने में एक धर्म्म हेतु और पुण्यदान साधु सेवाकाभी है किसलिये कि परमे-श्वरके भक्तजनोंको आराममिलताहै मंदिरवालेको उनका सत्संग होता है किस लिये गृहस्थियोंको गृहके कार्य्यों से मोह ममता विक्षेपता रहतीहै सो थोड़ेकाल मन्दिर के जाने और रहने से एकान्त में श्रवण और साधुओं

का दर्शन परमेश्वर का आराधन और ध्यान बनता है ऐसाही करते करते मन की शुद्धि की भी प्राप्ति होती है और यहमार्ग प्रतिमा पूजन मन्दिर आदिकका परम्परा से चला आता है और इसके करते करते भक्तों को सिद्धि और परमेश्वर सगुण स्वरूप के दर्शन भये हैं सो अपना आत्मा चैतन्य अत्यन्त वृत्तिके जमावसे प्रत्यक्ष भाव अनुसार दर्शन और बरदेता प्रतिमा में पाषाण बुद्धि को चित्तसे हटाकर अपना उपास्यदेव परमात्मा को सर्वव्यापक जानकर दृढ़ कर और जो कुछ बनसके भूखों और साधुओं के निमित्त बिनाफल की चाहके अन्न वस्त्रादिकदे और जो कोई पंडित आचार्य्य ज्ञानी आजावें उनको ठहराकर उनसे सत्संग श्रवणादिककरै और मन्दिरका पुजारी विद्यावान् और त्यागी सज्जन और जितेन्द्रिय होना चाहिये पूजाभक्ति निरे झांझबजाने और भोग लगाने का नाम नहीं है वेद विधि अनुसार पूजासेवा और साधुसेवा बिनाराग द्वेष और बिना विषय वासना कामादिक के कल्याणकारी है इससे प्रतिकूल अकल्याणकारी है सो हेशिष्य जो तुमने प्रश्न किये थे सो उनका उत्तर होगया अब तुम वैराग्य और अभ्यास करके कर्म उपासना वेदोक्त से अन्तःकरण की शुद्धिकर अपने निज स्वरूप आनन्द घनमें स्थित होजाओ उपासना आदि शक्ति सच्चिदानन्द स्वरूपकी जो निर्गुणसे सगुण स्वरूपभी वोही होती है और सब स्वरूपों में इसी की शक्ति व्यापकहै और ब्रह्मा और विष्णु आदि सबदेव उसीकी उपासना

करते हैं और शक्तिहीके बलकरके ईश्वरता और ज्ञान स्वरूपतामें सामर्थ्यवान्हैं मुख्य है भक्ति करके अन्तःकरण की शुद्धि शक्तिहीकी कृपासे होती आईहै (प्रश्न) हे स्वामी आपने अनुग्रह करके इस शरीर को कृतार्थ किया संशय विपर्य्यय तो नहीं रहे हैं परन्तु आप के अमृत रूपी वचनोंसे तृप्तिनहीं होताहै जीव ईश्वरका स्वरूप यद्यपिपहले आपनेवर्णन कियाहै तदपि विस्तार करके और श्रवण करना चाहताहूं (उत्तर) हे शिष्य दो सम्वादजिज्ञासु और महात्माके तुमसे कहतेहैं सावधान होके सुनो (प्रथम प्रश्न जिज्ञासुकायहहै) कि शुद्ध ब्रह्म एकहै उसीके प्रकाश करके माया उपाधि से सबल ब्रह्म ईश्वर और उसीब्रह्म के प्रकाश करके और अविद्याकी उपाधिसेजीव कहलाताहै उपाधिमें येभेदहैं कि जहांसतोगुणविशेषहै सो मायाहै जहांरजोगुण तमोगुणविशेष हैंसो अविद्या है ईश्वरजीव में इतनाही भेद उपाधिका अथवा कुछ औरहै और इन दोनोंके स्वरूप और विशेषणक्याहैं और ये दोनों एकहैं अथवा अनेकहैं (उत्तर) यद्यपि ईश्वर और जीवचेष्टा इसअद्वय शुद्धब्रह्मके प्रकाश करके करते हैं तदपिगुण विशेषण दोनों के सम नहीं हैं ईश्वरकी उपाधि शुद्ध सत्वमय माया है सो उस मायाकोभी ईश्वर अपने वशीभूत करके सर्वज्ञता सहित पूर्णशक्ति सर्व सामर्थ्ययुक्त अनेक चमत्कार धर्म साधक की चेष्टाकरतेहैं और जीवकी उपाधिमलिन और ज्ञानमय अविद्याहै सो यहजीव उस अविद्याके वशहोकरके उसके आधीन शुभाशुभ कर्म धर्माधर्मरूपी करता

है और भोगता है (श्लोकवेदांत) मायाबिम्बोवशी
कृत्य तांस्याद सर्वज्ञेश्वरः॥ अविद्यावशगस्त्वन्यस्तदव
चित्रपादनेकधेति १ बिम्ब शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द स्व-
रूप मायाको अपने बशमें करके सर्वज्ञहोय ईश्वरपद
को प्राप्तहोताहै तिसकोही सबलब्रह्म सगुण स्वरूपभी
कहते हैं निर्गुण शुद्ध स्वरूप में कुछ विकार न्यूनाधिक
भावनहीं होता सो वो ईश्वर माया को वशीभूत करता
भया धर्मसाधक चेष्टाकरता है उसीचैतन्य स्वरूप को
ईश्वरपद वाच्यजानो और वोही चैतन्यस्वरूप अविद्या
वशहोकर अपने सर्वव्यापकता ज्ञानस्वरूपताको भूल-
कर जगत्की ममता लियेहुये शुभाशुभ कर्मकरता और
भोगताहै और भय आशा में क्लेश सहता है सोईजीव
कहलाताहै वास्तव में तो चैतन्य स्वरूप एकहीहै परंतु
उपाधि का भेद है दोनों उपाधिद्वारा पृथक् २ पदको
प्राप्तहैं सोजीव अपने निज स्वरूप के अज्ञान और क-
र्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमानसेफँसाहुआ जन्ममरण आ-
दिकदुःखभोगतारहताहै और ईश्वरके विशेषण पहले
वर्णनहुये हैं अब शोचना चाहिये कि ईश्वर और जीव
दोनोंकी चेष्टा और अवस्था और गुण समनहीं है ई-
श्वर स्वाधीन धर्म उपकारक चेष्टाकरतेहैं जीव अविद्या
के आधीन रजतमक्रियामें घिराहुआ है जो यहजीव
सतोगुणकी सहायता से रजोगुण तमोगुणको त्यागता
हुआ गुरुवेदान्त वाक्यकरके साधन चतुष्टय सम्पन्न
होय दृढ़ज्ञानकी प्राप्ति करे तो अपने निज सत्यस्वरूप
आनन्दघन में लीन होसक्ताहै रजोगुण तमोगुण और

विधि निषेधक्रिया और साधन और स्वभाव वृत्तियों के बार्त्ताव भोजन व्यवहारादिक सहित सोलवें अध्याय और अठारहवें अध्याय गीता जी में लिखा गया (दूसरा प्रश्न जिज्ञासु का है) माया और अविद्या की उपाधि में जो चैतन्य ब्रह्म व्यापक ईश्वर और जीव कहलाता है सो तो ऐसा जाना जाता है कि अन्तःकरण में सतोगुण की विशेषता के समय ईश्वर और रजोगुण तमोगुण की अधिकता समय जीव होजाता है (उत्तर) माया और अविद्या एक नहीं है और किसी शास्त्र का यह मत नहीं है परमेश्वर की व्यापकता करके माया और अविद्या को एक समझना असम्भव है सूर्य्य एक है और उसके प्रतिबिम्ब अनेक घटों में परते हैं वे सत् प्रतिबिम्ब एक नहीं हो-सकते एक घट का प्रतिबिम्ब दूसरे से पृथक् है जिस घटमें निर्म्मल जल है तो जलको दवाकर प्रतिबिम्ब प्रकाशता है किसी घट में गँदला जल है गँदलापन करके प्रतिबिम्ब सूर्य्य का आप दबजाता है अन्तःकरण नाम मन बुद्धि आदिक का है सो जड़ विभूति में है और जीवात्मा चैतन्य विभूति में है अन्तःकरण न जीव हो सकता है न ईश्वर और अन्तःकरण की जो वृत्तियां सतरज तम मय उठती रहती हैं सो नाश को प्राप्त होती रहती हैं सो वे वृत्तियां भी ईश्वर जीव नहीं होसकती हैं नाश होने से क्योंकि ईश्वर और जीवको उपनिषद और गीता जी में अजर अमर अविनाशी प्रतिपादन किया है (प्रश्न) जितने जीव हैं उतने ही ईश्वर मानने होंगे अथवा एक जीव एक ईश्वर (उत्तर)

यद्यपि एकजीव और अनेकजीव दो रीति करके ब र्णन किया गया है एक जीव बाद वाले कहते हैं कि वास्तव में जीव आत्मा एकही है सब शरीरोंके अन्तः-करण में पृथक् पृथक् गुणों करके छापा भया है सोई एक जीव अपना प्रकाश अनेक शरीरों में पहुंचाता है जिससे चेष्टा व्यवहार की सिद्धि होती है परंतु अन्तः-करण के गुण अवगुण शुद्ध मलिन करके चेष्टा और प्रकाश में पृथकता रहती है क्योंकि शरीर अन्तःकरण सबके न्यारे न्यारे हैं और गुण अवगुण शुद्धता और मलीनता तारतम्यता करके अन्तःकरण प्रति न्यारे न्यारे हैं जैसा कि सूर्य्य और सूर्य्य के प्रतिबिंब और घटका ऊपर हम कह आये हैं तैसेही प्रतिबिंब आत्मा अनेक गुणों करके अनेक रीति से जैसा अन्तः करण होताहै तैसा भान होता है किसलिये कि संचित कृत के संस्कार करके ज्ञान अज्ञान शुद्धता मलीनता सुख दुःख द्रवता कूरता बिद्या अबिद्या आदिक शुभाशुभ गुण जो देह धारियों के कृत और सुभाव से पृथक् पृ-थक् होते हैं सो एक जीवके होते और उसके प्रकाश अंतःकरण अनुसार होने से एक जीव भी प्रतिपा-दन हुआ है और न्यारे न्यारे प्रतिबिंब के दृष्टान्त करके अनेक जीव भी माने गये हैं परंतु किसी शास्त्र करके ईश्वर अनेक और पृथक् पृथक् नहीं हो सकते ईश्वर ज्ञान स्वरूप अपने स्वरूप और दूसरों के स्व-रूप को जानता भया सर्व शक्तिमान् सर्वों के कर्मोंका फलदाता जग का कर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता सर्व व्यापक एकही

है नाना नहीं (प्रश्नचौथा) शुद्ध तत्त्व प्रधान जो माया है और मायोपहित चैतन्य को ईश्वर वर्णन किया और मलिन सत्व प्रधानता अविद्या होती है अविद्योपहित चैतन्य को जीव आपने कहा इससे जाना जाताहै कि यहमलीन सत्वमयशुद्ध सत्व होकर ईश्वर होजाताहै प्रथम तो यह शंकाहै कि जीव और ईश्वर एक कालमें सिद्ध नहीं होते दूसरे जो यह कहाजाय कि जीवों की चेष्टा और संकल्पादिक का जानने वाला एकही ईश्वर माना जायगा तो जीवभी एकही सिद्ध होगा (उत्तर) जीव ईश्वरका विभाग और स्वरूप शास्त्रने एक रीतिसे वर्णन किया है एकतो यह है कि अनादि और सकल कारण रूपसे बनने वाली जो माया और उसमें चैतन्य का प्रतिबिंब ईश्वर है और थोड़े देशकालमें रहनेवाली कार्य्य रूप जो आवरण शक्ति विक्षेप शक्ति युक्त और विद्या नामक उसमें चैतन्य का प्रतिबिंब जीव है दूसरी रीति यह है कि अन्तःकरण में चैतन्य का प्रतिबिंब जीव और विद्या में चैतन्य का प्रतिबिंब ईश्वर एक अन्तःकरण अविच्छिन्न चैतन्य जीव है और अनेक अन्तःकरण अविच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है जैसे मृत्तिका कारण है और घट आदिक कार्य्य हैं यह बात नहीं कह सकते एकही वस्तु को घटरूप से कार्य्यता और मट्टी रूप से कारणता है तैसेही माया को विशुद्ध सत्त्व प्रधानता रूप से कारणता और मलिन सत्त्व प्रधानता से कार्य्यता होती है जैसे घटके टूटने के पीछे केवल मट्टीही रहती है तैसेही मलीन सत्त्व के विशुद्ध सत्त्व में लीन

होने से केवल माया रहतीहै मलीन सत्व में भी समष्ठ
विशुद्ध सत्त्व रूप रहने से एक काल में जीव ईश्वर
दोनों सिद्ध हो सकते हैं जैसे एककाल में घट और
मृत्तिका और जैसे घट सरवा आदिक बहुत मृत्तिका के
कार्य्य हैं परन्तु जब वे मृत्तिका में लीन होजावें तब
केवल मृत्तिकाही रहजाती है घट मठ आदि से रुके
हुये आकाश अनेक रूप प्रतीत होते हैं परन्तु घट
मठ आदि के नाश के पीछे एकही महा आकाश रह-
जाता है इसी भांति कार्य्य अविद्या से रुके हुये जीव
तो अनेक प्रतीत होतेहैं परन्तु अविद्याके नाश होनेसे
अर्थात् मायामें लीनहोने से ईश्वर एकही रहता है इस
लिये अनेक जीव सिद्ध होनेपरभी अनेक ईश्वर मानने
नहीं परते तात्पर्य्य यहहै कि माया अनादि कालकी है
और अनिर्वाच्यहै और सत्यभीनहींहै क्योंकि ब्रह्मज्ञान
हुये पीछेनहीं रहती और असत्यभी नहीं क्योंकि प्रपंच
को दिखाती है आकाशादि भूतोंकी प्रकृति जैसे घटके
कारण मृत्तिका तैसेही सब प्रपंचकी कारण माया चैत
न्यसे सम्बंध रखनेवाली ऐसीजोमाया उसमें चैतन्यका
प्रतिबिंब सब जगह व्यापक ईश्वर है अविद्या करके
और आवर्ण शक्ति और विक्षेप शक्ति करके अनन्त
खण्डों में छोटे छोटे चिदंशोंको जो जीव रूप कहलाये
गये दिखानेवालीहै अर्थात् व्यापकमें सर्व्वज्ञता सहित
चैतन्यका प्रतिबिंब ईश्वर और खण्डोंमें अविद्या सहित
चैतन्य का प्रतिबिंब जीवहै रज और तम २ दोगुणोंसे
मलीन न भया ऐसा जो सतोगुण उसका प्रधान रहना

माया कहलाती है रजतम से मलीन अविद्या कहला-
तीहै मायामें प्रतिबिंब ईश्वर अविद्या में प्रतिबिंब जीव
है इसमत करके मायाके खण्डभी नहीं ठहरते हैं एकही
मूल प्रकृति संसार की रचने वाली है आवर्ण शक्ति
ज्ञान की रोंकनेवाली जीवकी उपाधि है इसलिये जीव
अपनेको भी नहीं जानता और जीवोंको भी नहीं जा-
नता और ईश्वरको भी नहीं जानता और एक रीति
यहभी है कि माया कारण और अन्तःकरण कार्य्य है
तो कारण में चैतन्य का प्रतिबिंब ईश्वर और कार्य्य
अन्तःकरण में प्रतिबिंब जीवहै व्यापक आकाश जैसे
घटसे रुकाहुआ घटाकाश कहलाताहै तैसे अन्तःकरण
से रुकाहुआ चैतन्य अर्थात अंतःकरण अविच्छिन्न
चैतन्यही जीव कहलावेहै और कोई कहतेहैं कि प्रपंच
को दिखानेवाला अज्ञान जब नष्ट होता है सुषुप्ति के
समय जो ज्ञान प्रपंचका नहीं रहता सो स्थूल रूपसे
नहीं है किंतु सूक्ष्म रूपसेहै क्योंकि वोहीजीव जागने के
पीछे फिर प्रपंचको देखताहै और वेदांतवाक्योंसे अनु-
भव होनेके पीछे स्थूल सूक्ष्म दोनों रूपसे अज्ञान नष्ट
होताहै क्योंकि आत्माके दृढ़ज्ञान हुये पीछे प्रपंच का
ज्ञान नहीं होता है सो जीवब्रह्म में लीन होताहै और
कोई कहतेहैं कि ईश्वरका प्रतिबिंब जीवहै और यहजीव
ईश्वरके आधीनहै जैसे घटका प्रतिबिंब घटके आधीन
घटके रहनेसे रहेगा घटके न रहनेसे न रहेगा तैसे संसार
में जीवोंको ईश्वरके आधीन मानना उचितहै अज्ञानमें
प्रतिबिंब जीव जीव को अन्तःकरण उपाधिक कहते हैं

अन्तःकण उपाधि मानने परभी अज्ञानकी भी जीव की
उपाधिमाननीहोगी जो केवलअन्तःकरणही उपाधिहोता
तो योगी अनेक देहोंमें कैसे भोगकर सकते अंतःकरण
तो एक ही देह में पहले से था और उसी से वहजीव कह
लाया यह तो नहींकह सकते कि योगके प्रभावसे योगी
का अन्तःकरण सब देहों में रहने योग्यहो गया इसलिये
एकही जीव भी सिद्ध हो सकेगा क्योंकि वेदान्त सूत्र
आदिमें योगी योग के बल से अनेक अन्तःकरण का
उत्पन्न कर्त्ताहै यहकहा है तो अनेक अन्तःकरण होने से
जीव भी अनेक मानने होंगे हमारे मतमें अज्ञानं एक
होने से एकही जीव मान ना चाहिये और जो ईश्वर का
प्रतिबिंब जीवको मानते हैं सो इस में भी संदेह है अन्तः
करण अविच्छिन्न चैतन्य जीवहै सो अन्तःकरण रोंक-
ने वाला स्थूलसूक्ष्म दोनों रूप से नाश होताहै तभी मुक्ति
होतीहै इसलिये जीव ईश्वर का प्रतिबिंब नहींमान सक-
तेहैं प्रतिबिंबमेंबिंब से भेद झूठा माना गया है औरस्व-
रूप से तो वह सत्यहै तो झूठ मानेहुये भेदकानाश यही
मुक्तिहै श्रुति में आत्मा को अविनाशी कहाहै सो झूठे
प्रतिबिंब पने के नाश होनेसे केवल चैतन्य रहेगा सो स
त्यही है इतनेही तात्पर्य्य से ईश्वरसे भिन्न जीवको कूट-
स्थ नहीं मान सकते और श्रुति में ईश्वर को अन्तर्या-
मी सब जीव आश्रित देहों में रहने वाला कहा है सो भी
इसी मत में सिद्ध होगा और कोई ऐसा भी कहते हैं
कि जिसमें रूप नहीं उसका प्रतिबिंब नहीं होसकता है
इसलिये रूप रहित ईश्वर का प्रतिबिंब जीवको नहींकह

सकते हैं इसलिये घट से रुके हुये आकाश को जैसे घ-
टाकाश कहते हैं तैसे अन्तःकरण से रुके हुये चैतन्य
को जीव कहतेहैं और जैसे किसीसे न रुके हुए आकाश
को महाआकाशकहतेहैं तैसेही अन्तःकरणसे न रुके हुए
चैतन्यको ईश्वर कहतेहैं कोई यहकहते हैं कि जैसे कुन्ती
का पुत्र कर्ण अपनेको कुन्ती पुत्र न समझके राधा पुत्र
समझाथा तैसे ही चैतन्य अविद्या वश अपने को जी-
व समझता है जैसे किसी राज पुत्र बालक को भील
चुराकर लेगये जब वह बड़ा भया और राजा के मंत्री
ने पहिचान के उस को बोध कराया कि तुम भील नहीं
हो किन्तु राजपुत्र हो तब वह आपको भील मानना
छोड़ के राज पुत्र समझने लगा इसी भांति यह सच्चि
दानंद स्वरूप ब्रह्म अपने को जगत् का कर्त्ता और
सर्वज्ञ समझने से ईश्वर भया अविद्या के वश सुखी
दुःखी समझने से जीव भया जब सद्गुरु और वेदा-
न्त के वाक्यों ने समझाया कि तुम विकार हीन हो और
तुम्हारा निज रूप इस भाँति करके सच्चिदानन्द है तब
यह भ्रमको छोड़ ब्रह्म रूप भया अर्थात् मुक्त भया इस
लिये जीव ईश्वर बिभाग दोनों कल्पित ही हैं अब जो
यह बात पूँछते हो कि जीव एक है या अनेक हैं इस में
कई मत हैं कोई कहते हैं कि एकही जीव है और एक
ही शरीर जीव से युक्त है अपर शरीर स्वप्न में देखे श-
रीरों की समान है उसी के अज्ञान से यह सब प्रपंच
प्रतीत होता है उस जीव को स्वप्न रहने तक जैसे स्वप्न
में देखे भये पदार्थों का व्यवहार होता है उसी भांति

जब तक अविद्या रहती है तब तक प्रपंच व्यवहार रहता है और लोग इस मत में विश्वास न करके क्योंकि ईश्वर ही जगत् का कारण वेद में सुना जाता है और जीव से न्यारा ईश्वर है यद्यपि उसको इस प्रपंच से कुछ प्रयोजन नहीं तथापि लीला अर्थकार्य्य करता है ऐसा जानकर एक ही हिरण्यगर्भ ब्रह्म का प्रतिबिंब मुख्य जीव है और जीव उसी हिरण्यगर्भ के प्रतिबिंब हैं जैसे एक ही पटमें अनेक चित्र होते हैं तैसेही पट हिरण्य गर्भ है और उस पटके लिखे हुये चित्र जीव की समान हैं कोई अन्तःकरण को जीव की उपाधि मान के नाना अन्तःकरण होने से जीव को भी अनेक करके मानते हैं कोई यह कहते हैं कि जीवों में अज्ञान का रहना मन के आधीन है जब तक मन रहता है तब तक अज्ञान भी बना रहता है और मनके नष्ट होने से अज्ञान नष्ट होजाता है यही मोक्ष है कोई ऐसा कहते हैं कि शुद्ध चैतन्य में अज्ञान नहीं रहता है किन्तु अन्तःकरण और प्रति बिंब में जो अविद्या करके अपने निज स्वरूप को नहीं जानता है अज्ञान रहता है जिस जीव को ज्ञान होता है उसका अज्ञान नष्ट होज़ाता है सोई मुक्त है अपर जीवों को जो ज्ञान नहीं होता है सो वे जीव बद्ध हैं इसमें भी कोई कोई जीव की अविद्या न्यारी न्यारी मानकर अविद्याके नाश को ज्ञानसे मुक्त और अविद्या के रहने में बंध मानते हैं और यह बात कि प्रपंच किस अविद्या से बना विचारी जाय तो जैसे अनेक तंतु से एक पटबनता है तैसे सबकी अविद्या करके

प्रपंच बना तब एक जीव को ज्ञान होने से एक अविद्या अंश के नष्ट होनेसे सब प्रपंच नष्ट नहीं होता है जैसे एक तंतुके नाश होनेसे सारे पटका नाश नहीं होता सो हे शिष्य ऐसा शास्त्रार्थ जीव ईश्वरके स्वरूप वादने अपने अपने अनुभव अनुसार अनेक भांति करके और अनेक युक्ति करके सज्जन बिचारवानों ने प्रतिपादन कियाहै और करते रहतेहैं सोभी हमने तुमसे वर्णन करदिया इसका तात्पर्य्य इतनाही जानो कि शुद्ध चैतन्य निर्गुण रूप परिपूर्ण एकही है सोई अपनी इच्छा और शक्ति करके जो शुद्ध सत्य प्रधान माया है तिसमें आप प्रति बिंबवत्हो ईश्वर सगुण स्वरूप सर्वज्ञ वही एक चैत-न्यहै नाना नहीं परंतु अन्तःकरण अविच्छिन्न चैतन्य जिसको जीव कहते हैं और जीवका स्वरूप चैतन्य कूटस्थ और तिसका प्रतिबिंब बुद्धिमें और बुद्धि वेदां-तमें वर्णन हुआहै तिसको एकभी मानते हैं चैतन्यकी एकत्वता करके और कोई कोई अनेक भी मानते हैं अन्तःकरण अविच्छिन्न होने से घटाकाश की नाईं सो ज्ञान से जब उपाधि और विकार अन्तःकरण के दूर होजातेहैं तौ फिर जीव संज्ञानहीं रहती और नानात्वभी नहीं रहता वही अद्वय शुद्ध सच्चिदानंद रूपही रह जाताहै सो हेशिष्य साधन मनन बिचारादिकसे अपने निज स्वरूप में वृत्तियों का प्रवाह रक्खो सो ऐसा करते करते ईश्वर अनुग्रह करके जब पूर्ण ज्ञानका प्रकाश हृदय में होगा तब फिर न कुछ कर्त्तव्य रहे न श्रोतव्य रहै न नानात्व रहै न जीव रहै न माया न ईश्वर केवल

अपनाही आत्मा प्रकाशक भान होगा ॥ स्तुति माधव छंद ॥ हे कारण ब्रह्मचिदानँद मय अज अद्वय नित्य निराकारं ॥ जयज्ञाता ज्ञान स्वरूप अनादि अनन्त निजिच्छा साकारं ॥ निर्गुण निर्लिप्त निरावेवं सावेव सुगुण सोजग व्यापक ॥ मन बुद्धिगिरा गोतीत अगमद्रष्टा श्रोताप्रेरक वाचक ॥ जो अद्वयभांत अरूप अकर्तासो भासत वहुविधि रूपा ॥ सोइजग कर्त्ता भर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता उर प्रेरक सुर भूपा ॥ विधिहूते आदिसो मध्य वही सोई अंत अनंत परातपरं ॥ दीसत मनबुद्धि अगम अति सूक्षम सो परिपूरण अति विस्तार वरं ॥ अस्थित सब काल सकल दिशि जो सब भूप चराचर में गुप्तं ॥ जिमि दूधमें घृत्त सदा युक्तं अति अद्भुत शक्ती निर्लिप्तं ॥ तुमहींहो शक्ति तुम्हींविष्णू तुम रुद्र गणेश दिनेश नुतं ॥ पुनि तुमहीं इनके कारणहो प्रभुतुम हो उपास्य उपासक तुम ॥ तुमहीं श्रीराम तुम्हीं श्रीकृष्ण अव्यक्त सेधारी वहुव्यक्ती ॥ तुमहीं सीताराधा श्यामा भुवनेश्वरि विद्या वहुशक्ती ॥ तुम पूरुष प्रकृती भासक हो कूटस्थ सकल उर पुरवासी ॥ तुम ज्ञानाज्ञान प्रकाशकहो साक्षी सतचिद आनँदराशी ॥रवि विधि नक्षत्रादिक तुमहो तुम हीं इनके सिरजन हारे ॥ पुनि आप जानावतहो तिनको द्रष्टा ज्ञाता पुनिहोन्यारे ॥ तुमहींहो सुगंध तुम्हीं हो पुष्प तुम्हीं हो घ्राण पिता माता ॥ कर्त्ताहो अकर्त्ता कर्म तुम्हीं भोगीहो अभोगी फल दाता ॥ तुमहीं हो वेद तुम्हीं वेदज्ञ तुम्हीं विद्या तुमहो बुद्धी ॥ तुमहीं सतगुरु जिज्ञासूहो तुमहींसाधन तुमहोसिद्धी ॥ यद्यपि अविकार अक

त्तौ शुद्ध अलिप्त असंग सोश्रुतिगाथा॥ तद्यपिविनसत्ता चैतन्य के क्या करसकै है यह जड़ माया॥ निज इच्छा शक्ति कल्पनाकरसत्ता प्रति आपहीहो सर्वदा ॥निरवय व तटस्थ अकर्त्ता तुम परि पूरण आपही आप सदा॥ तुमहीं हो पुरुष तुम्हीं प्रकृती तुमहीं तो प्रकृति प्रकाश कहो॥ तुमहीं परमातम ईश्वर तुम चिदअंतस वृत्ती भासकहो ॥ भये सब तुमते सबमें तुमहो तुममेंहै पुनि भवतीतं ॥ तुम अद्वय अठ्य अमर व्यापक यह भव सब कल्पित श्रुति गीतं॥आदंत अदृष्ट प्रतीति मध्यमें नामरूप तन अध्यासा॥ जिन मतिहींजै त्रिधिमात पिता करवायो जैसा अभ्यासा॥ जगमिथ्या आतम सत पढ़ सुन अचरज में बरणत समभत जन॥ कोउ देखि सकै नहिं जानसकै हैं थकित चित्त बुधि इन्द्री मन॥ इंद्री अन्तष्का विषय नहीं कारज कारणको क्या जानै॥ कठपुतली बाजीगर कुकि हैं विधि देखै समभै पहिचानै॥ हे बिंबचिदानँद सिन्धु विभूअज अठ्य पुरातनकरुणामय॥ चिद सागर लहर चिदाभासी यह जीव भ्रमतहै मैं तू मय॥ प्रभुमाया ताहि भुलाय सुवश भवसागर माहँ भ्रमावतहै॥ प्रभुसत्ताकर ये असतमाया मर्कटकी तुल्य नचावत है॥ इन कठपुतलिन संसारी की प्रभु हाथ तुम्हारेहै डोरी॥ छूटेंगे तबजब कृपा करो तुम खैंचोगे आपन ओरी॥ बीते नाचत बहु जन्म गुसाईं नशे उन मिथ्या अभ्यासा॥ निज रूपहि भूल यह दीन भया बश कामादिक देह अध्यासा॥ निजगुण प्रकृति संचित बशहो पुनिपुनि दुखयोनी माहँ भ्रमत॥ ममता तृष्णा

चिंता करके कबहूं नाहिं शांति लहै मनचित ॥ तव मायाप्रवल अमितस्वामी कामादिक तासु कुटुंबप्रबल॥ पुनिसंचित पाप अशुभ चिंतन मन विषयी चंचल बुद्धि समल ॥ यह जीव अबल अज्ञानी पर बांधी है कमर रिपुता सबनै ॥ शुभकर्म विचारति तिक्षाको मेटत क्षण क्षण सुनिये ये बिनै ॥ मनमान अभिमान को खो दीजै और मायाका छल बल छीजै॥ निज पदकी भक्ती रस दीजै मोको अपनो में गिन लीजै ॥ त्रयगुण मय प्रबल प्रकृत्ती कर चिदग्रंथी लग भया संसारा ॥ तुम माया यंत्र भ्रमावतहो सबको प्रभु आपसो उबारा ॥ प्रभु माया बांधेव बहुविधि चिद आभासी कोसो है जीवा ॥ पुनि छूटन हेतु रचे गुरु वेद उपदेशक प्रभु करुणा सीवा ॥ बरणी दोउ बिधि भक्ती साधन पुनि साधन ज्ञान अनेक प्रभुः ॥ मीमांसा सांख्य पतंजलि श्रुतिस्मृति योग अष्टांग बिभुः॥ पुनि श्रद्धा बुद्धि बिबेक स्मृति सकल उर देह सो आप प्रभुः ॥ कलिस माया कर देहु भुलाय चिदानँद रूपही ज्ञान विभुः ॥ तवशक्ति अचिन्त्य अमित रचना नहिंपहुंचसकै बुधितेहि सीवा॥ मिश्रित गुणदोष समुद्र परावश होय प्रकृति यहजीवा ॥ सो अति दुस्तर और यह परतंत्र बने साधन कस हे स्वामी ॥ अष्टादश अंत बचन प्रभुकर अवलंब यही अंतरयामी ॥ जो त्याग सकल धर्मोंको आवत शरणा गति मुस्के अद्वयकी ॥ ताको मैंछोड़ाय सकल पापनते देहूं उत्तम शुद्ध गती ॥ निज आश्रित शरण श्रद्धादीजै करि करुणा करुणाकर रामा ॥ अंतसहो शुद्ध जमें

वृत्ती सत चिद आनँदमें सुख धामा॥ हौंदूर असंतन केगुण उरसे संतोष लक्षण उपजें मनमें॥ निज आपा में तू भूल जगतहो मगन प्रेमआनँद घनमें ॥ कोउआर्त्ति कोउ अर्थार्थी जनकोउ जिज्ञासू कोउ है ज्ञानी ॥ कोउ कर्मंष्टी कोउसंन्यासी कोउ देवि उपासकहै ध्यानी॥ कोउ शैवी वैष्णव आचारी योगी कोउ शरणागति माना॥ निज इस दास युगल में नहिं कोउ गुण ममता मय है त्रयगुणसाना॥ पुनिहो कैसाहि तुम्हाराहै तुममें है तुमते नहिंन्यारा॥निजवृद्द सँभार निहार अपनादिशिकृपा करा तो होपारा॥ टुकदृष्टि अनुग्रह स्वामी से ममता मिट दृढ़मन ऐसीहो॥ हौ नाहीं पुनिहै नाहिं जगत परिपूरण अद्वय आपहि हो ॥ इति श्रीयुगलसंबाद ज्ञानसाधन समाप्तम्॥ शुभम्॥

इति॥

प्रमोदवनविहार ॥

लघुबालक असमर्थ अनुगामी शिवानन्द नरयात्र के हुजूर में बलिहारी तद्रूप एक पाती के वसीले सन्मुख भेंट करता है कैसी अध्यात्मी अनोखी पाती है (१) प्रत्यक्ष तिलकद्वारा जो प्रवेशमें योग्यताहोय तोमाहात्म्य देखिये (२) फेरप्रश्नोत्तरद्वारा तत्त्व अनुभवहू अवश्य कहिये कि जुड़ाती वा तपाती छातीहै ॥

वैराग्यप्रदीप टीका भाषा सहित ॥

जिसमें श्रीकाष्ठजिह्वस्वामी के पदों पर श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजी ने ऐसी चुनीहुई और उत्तम २ वार्त्ताओं की योजना की है कि उसके पढ़तेही भक्ति विवेक वैराग्य उत्पन्नहो॥

हरिहरसगुणनिर्गुणपदावली ॥

शिवदत्तजी स्वामी रचित-जिसमें बहुतही अपूर्व और अनुपम भजन श्री विष्णु और शिवजी के हैं ॥

ज्ञानप्रकाश ॥

मुंशी प्रभूदयाल साहब रियासत अजयगढ़कृत-जिसमें विरागांग वर्णन, कुसंग दोष विषय, सत्संग माहात्म्यफल, धर्म परीक्षा व्याख्यान, आत्म परीक्षा नित्यत्व, प्रेत्यभाव कर्मानुसार फल भोग, ब्रह्मलक्षण परीक्षा, योगांग वर्णन और अष्टांगयोग विभूति इत्यादि अनेक विषय वर्णित हैं ॥

ज्ञानप्रकाश ॥

लाला रघुबरदयाल अगरवाल इटावाकृत-कागज़ हिनाई जिसमें दोहा चौपाई और कवित्तादिकों में योगवाशिष्ठके मत से काम, क्रोध, लोभ और मोह इत्यादिक अंधकारों के निवारण होनेका उपाय वर्णित है ॥

भक्तसागर बाबा चरणदासकृत ॥

जिसमें श्रीकृष्णकी जन्मभूमि श्रीव्रजकी प्रशंसा व चरित्र कथन व अमरलोक अखंड धामकी यथोचित प्रशंसा, पुनः गुरु चेलेके सम्वादमें जहाजरूपी धर्मसे भवसागर तरण तारण पुनः

अष्टांग योग व प्रत्येक आसनों के पृथक् २ नियम व संसार स-मुद्र से उतरने के अर्थ सम्पूर्ण संदेहों का निवृत्ति उपाय कथन और काम, क्रोध, लोभ, मोह और मदादि की तुच्छता दर्शाय भगवद्भक्ति उत्पन्न होने के अनेक यत्न अनेक प्रकारकी छन्दों में वर्णित हैं ॥

चैतन्यचंद्रोदय प्रथमखण्ड भाषा ॥

जिसमें योगवाशिष्ठके वैराग्य और मुमुक्षु इन दो प्रकरणों की कथा दोहा चौपाई सोरठा इत्यादि अनेक प्रकारके छन्दों में वर्णित है ॥

सिद्धान्तप्रकाश बाबापरमहंस परमानंदजीकृत ॥

जिसमें अज्ञानसे उत्पन्न हृदयके अन्धकारको दूर करनेवाला वेदान्त वर्णितहै जिसके अभ्यास व मनन करने से सम्पूर्ण चित्तकी दुरावृत्ति दूरहोजातीहै और मुमुक्षु पुरुष बेपरिश्रम मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥

तनुरक्षक धर्मप्रकाशक ॥

शहर बनारस निवासि परमहंस परमानंदजी कृत—जिसमें यावत् देहधारी पुरुषों को नित्य नैमित्तिक कर्म करना पड़ता है उसका बिस्तार सहित विधानहै अर्थात् प्रातःकालसे सायंकाल शयन पर्यंत यावतधर्म स्वरूप कर्म करना चाहिये उनका वर्णन और देह रक्षाके लिये सम्पूर्ण वस्तुओं का यथोचित विधान वर्णित है ॥

संतमहिमासनेहसागर बाबाछेदीदासकृत ॥

जिसमें प्रसिद्ध २ संतों की महिमा व करतूति दोहा व चौपाई आदि छन्दों में वर्णन कीगई है ॥

अनुरागसागर ॥

जिसमें धर्मदासजी के प्रश्न द्वारा कबीरदासजी की बाणी वेदांत मत में वर्णन कीगई है जिसको नंदकुमारजी ने दोहा चौपाई आदि छन्दों में संग्रह कराया है ॥